।। ओं ।।

श्री वीतरागाय नमः

परमात्म उपासना पाठ संग्रह

प्राप्ति स्थान :

श्री 1008 आदिनाथ दि० जैन मन्दिर जी

भारत नगर (निकट अशोक विहार), दिल्ली

मूल्य : अमूल्य

टाइपसेटिंग ·
बुकमैन
ए-121, विकास मार्ग,
शकरपुर, दिल्ली

मुद्रक टूडे आफसेट प्रिन्टर्स दिल्ली

स्व. श्रीमति चन्द्रकान्ता जी
ध.पत्नि ला. छुट्टनलाल जी (मैदावाले)
की पावन स्मृति में
उनके सुपुत्र प्रदुमन कुमार जौहरी द्वारा
सप्रेम भेंट

श्री

अनुक्रमणिका

आचरण योग्य विचारणीय बातें

आचरण हमारा शुद्ध नहीं, कल्याण हमारा कैसे हो।।
विषियन वश भक्ष अभक्ष भखे, हियज्ञान उजाला कैसे हो।।
पूजाकर मन इच्छा धरते, मन चंचल कर माला जपते।।
झूठे धन्धे गटपट करते, करमों का निवारा कैसे हो।।

अनादि से मोह भाव के वशीभूत मिथ्याभाव से अज्ञान असंयम द्वारा पर-परिणित को अपना मानकर अपने स्वरूपमय स्वपरिणित रूप शुद्ध आत्मा का यथार्थ भेद ज्ञान हमें आज तक नहीं हुआ। इसी कारण राग-द्वेष, मोह, भाव, रूप, मिथ्याभाव से मुक्त होकर हमे अनीति, अन्याय और अभक्ष के त्याग के सच्चे भाव नहीं हुए। अतः आज से हम इस और जागरूक रहकर अन्याय, अनीति व अभक्ष भक्षण का त्याग कर शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हों।

मोक्षमार्ग में यद्यपि अंतरंग परिणाम प्रधान है, परन्तु उनका निमित होने के कारण भोजन में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखना चाहिए। विवेकीजनों को अभक्ष्य भक्षण का सदैव त्याग करके शुद्ध अन्न, जल आदि का ही ग्रहण करना योग्य है।

त्यागने योग्य बाइस-अभक्ष

ओला, घोरवड़ा निशि भोजन, बहुवीजक, बैंगन संधान।
बड़, पीपल, उमर, कठूमर, पाकर, फल जो होएँ अजान।।
कंद मूल, माटी, विष, आमिष, मधु, मक्खन, अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ, चलित रस, जिनमत ये बाइस अभक्ष बखान।।

मद्य, मांस मधु, मक्खन, बासी भोजन, अचार मुरब्बे, 24 घण्टे से पहले बने हुए पापड़, मंगोड़ी, बीड़ा व (सन्दिग्ध) अन्न, रात्रि भोजन, जलेबी, गोभी का फूल, कांजी बड़ा, द्विदल (दूध दही के साथ दालों व दाल द्वारा मिश्रित पदार्थों का) आदि पदार्थ त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाने के कारण प्राणी मात्र पर दया का भाव रखने वाले, भगवान की पूजन प्रक्षाल करने वाले व आगम के अध्ययन करने वाले बन्धुओं के भक्षण करने योग्य पदार्थ नहीं है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अभक्ष्य पदार्थों का प्रयोग न करके केवल भक्ष्य पदार्थों का ही प्रयोग करना चाहिए।

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादा

पदार्थ का नाम	शीत	ग्रीष्म	वर्षा
बूरा (घर मे बनाया)	1 माह	15 दिन	7 दिन
दूध (दुहने के पश्चात्)	48 मि0	48 मि0	48 मि0
दूध (उबालने के बाद)	24 घण्टे	24 घण्टे	2 घण्टे
दही (गर्म दूध का)	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
छाछ	48 मि0	48 मि0	48 मि0
घी, तेल व गुड़	जब तक	स्वाद न	बिगड़े
आटा (सर्व प्रकार का)	7 दिन	5 दिन	3 दिन
(पिसे हुए) मसाले	7 दिन	5 दिन	3 दिन
नमक (पिसा हुआ)	48 मि0	48 मि0	48 मि0
नमक (मसाला मिला के देने पर)	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
खिचड़ी, रायता, कढ़ी, तरकारी	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
रोटी, पूड़ी, हलवा (अधिक जल वाले पदार्थ)	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
मौन मिले पदार्थ	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
पकवान (पानी रहित)	7 दिन	5 दिन	3 दिन
दही (मीठे पदार्थ सहित)	48 मि0	48 मि0	48 मि0
गुड़ मिला दही या छाछ सर्वथा अभक्ष्य है			

आवश्यक नियम

1. प्रतिदिन देव पूजन, शास्त्र स्वाध्याय व गुरु भक्ति करना।
2. रात्रि भोजन व अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण नहीं करना।
3. 24 घण्टे मे कम से कम एक बार 15 मिनिट को स्व चिन्तन करना।
4. चिन्तन द्वारा दिन भर मे हुई गलतियों का पश्चाताप करना।
5. चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना (चमड़े के जूते चप्पल नहीं पहनना)
6. अफीम, भाग, तम्बाखू आदि नशीली वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना।
7. अनैतिक कार्य नहीं करना व हित मित प्रिय वचन बोलना।
8. नकदी, सोना, चांदी, जायदाद आदि की मर्यादा निश्चित करना।
9. विकथाओ (स्त्री, राज, चोर भोजन) कथा मे अपना समय नहीं गमाना।
10. अपनी आय का कम से कम 1/10 हिस्सा दान के कार्यों मे लगाना।
11. अष्टमी, चतुदर्शी या महीने मे कम से कम 1 बार उपवास या एकासन करना।
12. आहार के लिए हरी अनाज, फल आदि की गिनती कर नियम करना।

देव दर्शन पाठ

(ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी कृत)

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाए निज गुन हाने।।
पाये अनंते दुख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।
भव बंधकारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञान मय, सुख निधि-सुधा नहीं पानकर।। 1।।

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊं रंगा।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित्त पगैं।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगैं।। 2।।

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूतभगाकर, मुनिव्रत धारूं वन जाकर।।
धर कर दिगंबर रूप कब, अठ बीस गुण पालन करूं।
दो बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूं।।
तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आश्रव परिहरूं।
अरू रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरूं।। 3।।

कब धन्य सुवअसर पाउं जब निज में ही रम जाऊं।
कर्तादिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊं।।
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूं।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूं।।
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूं।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दु:खद भवसागर तरूं।। 4।।

दर्शन स्तोत्र

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनं।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।। 1।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।। 2।।
वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम्।
जन्मजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।। 3।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम्।। 4।।
दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम्।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधे:।। 5।।
जीवादितत्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।। 6।।
चिदानन्दैकरूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नम:।। 7।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्षरक्ष जिनेश्वर।। 8।।
नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।। 9।।
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे-भवे।। 10।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासित:।। 11।।
जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोट्यामुपार्जितम्।
जन्ममृत्युजरारोगं हन्यते जिनदर्शनात्।। 12।।
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक तिलकं प्रतिभासते में, संसार वारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्।। 13।।

देव-स्तुति

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि रज रहस विहीन।। 1।।

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोह तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान-अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमंडित अपार।। 2।।
जय परमशांत-मुद्रा समेत, भविजन को निज-अनुभूति हेत।
भवि भागन-वचजोगेवशाय, तुम धुनि-ह्वै सुनि विभ्रम नसाय।। 3।।
तुम-गुण चिंतत निजपर-विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जग भूषण दूषणवियुक्त, सबमहिमायुक्त विकल्पमुक्त।। 4।।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभ-विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक-परिणतिमयअछीन।। 5।।
अष्टादश-दोष विमुक्त धीर, सचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महन्त, नव केवल लब्धिरमा धरंत।। 6।।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर मे दुख छार-वारि, तारन को और न आप टारि।। 7।।
यह लखि निज दुख गद हरणकाज, तुमही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुःख जो चिर लहाय।। 8।।
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य-पाप।
निजको परको करता पिछान, पर मैं अनिष्टता इष्ट ठान।। 9।।
आकुलित भयो अज्ञानधारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परणति में आपों चितार, कबहूं न अनुभवो स्वपदसार।। 10।।
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मंझार, भव धर धर मर्‌यो अनंत बार।। 11।।
अब काललब्धिबलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद, चाख्यो स्वातम रस दुख-निकंद।। 12।।
तातै अब ऐसी करहु नाथ, बिछरै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव।। 13।।
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूं आपमें आपलीन, सो करहु होउं ज्यों निजाधीन।। 14।।

मेरे न चाह कुछ और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु, हरहु मम मोहताप।। 15।।
शशि शांति करन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय।। 16।।
त्रिभुवन तिहुँकाल मंझार कोय, नहिं तुम बिननिज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुःख-जलधिउतारन तुम जहाज।। 17।।

दोहा— तुम गुणगणमणि गणपति, गणत, न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोगसंभार ।। 18।।

मंगल आरती

मंगल आरति आतम राम, तन मन्दिर मन उत्तम ठान।
सम रस जल चन्दन आनन्द, तन्दुल तत्व स्वरूप अमन्द।। 1।।
समयसार फूलन की माल, अनुभव सुख नेवज भरथाल।
दीपक ज्ञान ध्यान की धूप, निरमल भाव महाफल रूप।। 2।।
सुगुण भविक जन इक रंग लीन, निहचै नवधा भक्ति प्रवीण।
धुनि उत्साह सुहन हद जान, परम समाधि निरत परिधान।। 3।।
बाहिज आतम भाव बढ़ावै, अन्तर ह्वै परमातम ध्यावे।
साहब सेवक भेद मिटाय, 'द्यानत' एकमेक हो जाय।। 4।।

स्तुति

तुम पूजत, मुझको मिली, मेरी संपति आज।
कहाँ चक्रवर्ति संपदा, कहां स्वर्ग साम्राज्य।। 1।।
तुम वदत जिन देव जी, नित नव मंगल होय।
विघ्न कोटि तत छिन टरै, लहहिं सुजस सब लोय।। 2।।
तुम जाने विन नाथजी, एकश्वास के माहिं।
जन्म मरण अठ दश किये, साता पाई नाहि।। 3।।
अन्य देव पूजत लहे, दुःख नरक के बीच।
भूख प्यास पशु गति सही, करयो निरादर नीच।। 4।।
नाम उचारत सुख लहै, दर्शन सो अघ जाय।
पूजत पावै देव पद, ऐसे है जिनराय।। 5।।

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सुर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरो।।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं, जासु में परपंच ना।। 1।।

चौबीस श्री जिनदेव चाहूं और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूं, वंदिते पातक नसैं।।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूं, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूं, भजत भाजैं भ्रम जुरी।। 2।।

नव तत्व का सरधान चाहूं, और तत्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूं, ठीक तासौं भय हरों।।
पूजा परम जिनराज चाहूं, और देव न चहूं कदा।
तिहुंकाल की मैं जाप चाहूं, पाप नहीं लागे कदा।। 3।।

सम्यकत्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूं भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूं, महा हर्ष उछाव सों।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूं प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूं, महामंगल रीति सों।। 4।।

मैं वेद चारों सदा चाहूं, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूं, अधिक चित्त उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूं, भुवनवशि लाहो लहूं।
आराधना मैं चारि चाहूं, अन्त में ये ही गहूं।। 5।।

भावना-बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं, त्याग भाव उद्योत हैं।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूं, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूं, शिव लहूं जहं मोहना।। 6।।

मैं साधुजन को संग चाहूं, प्रीति तिनहीं सों करों।
मैं पर्व के उपवास चाहूं, आरम्भ मैं सब परिहरौं।

इस दुखद पंचम काल माही, कुल श्रावक मैंने लह्यौं।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहिं, निबल तन मैंने गह्यों।। 7।।
आराधना, उत्तम सदा चाहूं, सुनो तुम जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी।।
वसुकर्मनाश, विकाश ज्ञान, प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन, समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये।। 8।।

जलाभिषेक पाठ

दोहा— जय-जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु नमौं जोरि जुगपान।।

छन्द अडिल्ल और गीता

श्रीजिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी।।

अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है।।
पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित में सरधान यातें नाम ही में भक्ति है।। 1।।

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने।
कर्म मोहिनी अन्तराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यों केवलज्ञान में।
इन्द्रादिकके मुकुट नये सुरथान में।।

तब इन्द्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत भयो।
तुम पुण्य को प्रेर्यो हरि है मुदित धनपतिसो चयौ।।
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपदको करौ।
साक्षात् श्री अरहत के दर्शन करौ कल्मष हरौ।। 2।।

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती।
चल आयो तत्काल मोद धारै अती।।
वीतराग छवि देखि शब्द जय-जय चयौ।
दै प्रदच्छिना बार-बार बंदत भयो।।

अति भक्ति भीनो नम्र चित है समवशरण रच्यों सही।
ताकी अनुपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं।।
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं।।3।।

सिंहासन तामध्य बन्यों अद्‌भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यों प्रभा दिनकर छिपे।।
तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमर जी।
महाभक्तियुत ढ़ोरत हैं तहा अमर जी।।

प्रभु तरनतारन कमल ऊपर, अन्तरिक्ष विराजिया।
यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया।।
मुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकैं।
बहुभांति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकै।।4।।

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे।
राग रोष निद्रा मद मोह सबैं खसे।।

श्रम बिना श्रमजलरहित पावन, अमल ज्योतिस्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी।।
ऐसे प्रभु की शांतमुद्रा को, न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं, हम भानु ढ़िग दीपक धरैं।।5।।

तुमतो सहज पवित्र, यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत, नहीं मज्जन ठयो।।
मैं मलीन, रागादिक मलतैं, है रह्यौ।
महामलिन तनमें, वसुविधिवश, दुख सह्यौ।।

बीत्यो अनंतो काल, यह मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश, सब मल रोषरागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तै उद्धार, शिववासा करौ।।6।।

मैं जानत, तुम अष्टकर्म हनि शिव गये।
आवागमन विमुक्त, रागवर्जित भये।।
पर तथापि, मेरो मनोरथ पूरत सही।
नयप्रमाणतैं जानि, महा साता लही।।

पापाचरण तजि, न्हवन करता, चित्त मे ऐसे धरूं।
साक्षात, श्रीअरहत का, मानो न्हवन परसन करू।।
ऐसे विमल परिणाम होते, अशुभ नशि शुभबन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतै, ह्वै शर्म, सब विधि नासतै।। 7।।

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतै।
पावन पानि भये, तुम चरननि परसतैं।।
पावन मन ह्वै गयो, तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं।।

पावन भई परजाय मेरी, भयो मै पूरणधनी।
मै शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी।।
धन्य ते बडभागि भवि, तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जलमणि कुम्भभरि भक्ति करी।।8।।

विघनसघनवनदाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोहमहातमदलन प्रबल मार्तण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो।।

आनन्दकारण दुख निवारण, परममगलमय सही।
मोसो पतित नहि और तुमसो, पतित तार सुन्यों नहीं।।
चिंतामणि, पारस, कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नव काजे चढ़े ते, भये भवदधि पार ही।।9।।

दोहा— तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार।।10।।

यह पूरा पाठ पढ़कर निर्मलवस्त्र से प्रतिमा जी को साफ करें तथा निम्न पद बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें।

निर्मलं निर्मलीकरणं, पावनम् पापनाशनम्
जिन चरणोदकं वंदे, अष्टकर्म विनाशनम्।।

दर्शन स्तुति

निरखत जिनचन्द्र-वदन, स्व पद सुरुचि आई। टेक
प्रगटी निज आन की, पिछान ज्ञान भान की।।
कला उदोत होत, काम जामनी पलाई।। निरखत
साश्वत आनन्द स्वाद, पायौ विनस्यों विषाद।
आन में अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई।। निरखत
साधी निज साध की, समाधि मोह व्याधि की।
उपाधि को विराधी कै, आराधना सुहाई।। निरखत
धन दिन छिन आज, सुगुनि चिंते जिनराज अबै।
सुधरो सब काज 'दौल', अचल रिद्धि पाई।। निरखत

विनय पाठ

दोहावली

इह विधि ठाडो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जुआठ।। 1।।
अनंत चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सरताज।
मुक्ति-वधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज।। 2।।
तिहुं जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव सुख के करतार।। 3।।
हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास।। 4।।
धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप।। 5।।

मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निरमल भाव।
कर्म-बंध के छेदने, और न कछु उपाव।। 6।।
भविजनकों भव-कूपतैं, तुम ही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भंडार।। 7।।
चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजनको शिवगैल।। 8।।
तुम पदपंकज पूजतै, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता कों धरैं, विष निरविषता थाय।। 9।।
चक्री खगधर इन्द्रपद, मिलैं आपतै आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं नेम सकल हनि पाप।। 10।।
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।। 11।।
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव।। 12।।
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।। 13।।
राग सहित जग में रूल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव।। 14।।
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यचं अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।। 15।।
तुमको पूजैं सुरपती, अहपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।। 16।।
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिन्धु में, खेय लगाओ पार।। 17।।
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान।। 18।।
तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार।। 19।।
जो मैं कह हूं और सौं, तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोसौं बनी, जातैं करौं पुकार।। 20।।
बंदौ पांचों परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश।। 21।।
चौबीसौं जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यौ पाठ सुखदाय।। 22।।

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नम: पुष्पाजलिक्षिपामि।

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा—अरहतां लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोअर्हते स्वाहा पुष्पाजलि क्षिपामि।

मंगलविधान (संस्कृत)

अपवित्र: पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितोऽपिवा।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं, सर्वपापै: प्रमुच्यते।। 1।।
अपवित्र: पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
य: स्मरेत्परमात्मानं, स: बाह्याभ्यंतरे शुचि:।। 2।।
अपराजितमंत्रोऽयं, सर्वविघ्नविनाशन:।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मत:।। 3।।
एसो पञ्च णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं होई मंगल।। 4।।
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिन:।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वत: प्रणमाम्यहम्।। 5।।
कर्माष्टकविनिर्मुक्त, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।। 6।।
विघ्नौघा: प्रलयं यांति शाकिनी भूतपन्नगा:।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।। 7।।

(पुष्पाजलि क्षिपामि)

उदक चंदन तंदुल पुष्पकै· चरुसुदीप सुधूपफलार्घकैः।
ध्वलमंगलगानरवाकुले, जिनगृहे जिननाममहं यजे।।
ॐह्रीं श्री भगवज्जिनेन्द्रसहस्रनामेभ्यो अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वाद-नायकमनंत-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु जैनेंद्र-यज्ञ-विधि-रेष मयाऽभ्यधायि।। 1।।
स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय स्वस्तिस्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्तिप्रकाश-सहजोर्जित दृङमयाय, स्वस्तिप्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय।। 2।।
स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभाव-परभावविभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय।। 3।।
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूप, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य-बल्गन्,भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।। 4।।
अर्हत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोध वह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।। 5।।

।। इति पुष्पाञ्जलि क्षिपामि ।।

स्वस्ति-मङ्लम्

(यहा पुष्प क्षेपण करें)

श्रीवृषभो न स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजित।
श्रीसभव स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमति· स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचंद्रप्रभ·।
श्रीपुष्पदन्त स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतल·।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।
श्रीविमल. स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्त·
श्रीधर्म· स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथ.।
श्रीमल्लि· स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रत·।
श्रीनमि स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथ।
श्रीपार्श्व· स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्धमान·।

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(प्रत्येक श्लोक बोलने के बाद पुष्प-क्षेपण करे)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-कैवलौधाः स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।1।।

कोष्ठस्थ—धान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।2।।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-बिलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।3।।

प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धा प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।4।।

जघङ्गावलि-श्रेणी-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजाङ्कुरचारणाह्वा।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।5।।

अणिम्नि दक्षा· कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनोगरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो न· ।।6।।

सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।।7।।

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणं चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।8।।

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च।
सखिल्ल-विड्-जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासु. परमर्षयो नः।।9।।

क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।10।।

(इति परमर्षिस्वस्तिमङ्गलविधानम्।)

पूजा पीठिका (भाषा)

हो अशुद्ध वा शुद्ध नर, सुस्थित दुस्थित कोय।
पञ्च नमस्कारहिं जपे, सर्व पाप क्षय होय।। 1।।
हो पवित्र अपवित्र वा, सर्व अवस्था माहिं।
जो सुमरहिं परमात्म-पद, सर्वशुद्धि ता माहिं।। 2।।
यह अपराजित मन्त्र है, विघ्न-विनाशक सर्व।
सर्व मंगलों में प्रथम, मंगलदायक पर्व।। 3।।
सर्व पापनाशक महा, मन्त्र पञ्च नवकार।
सर्व मंगलों में प्रथम, मंगलदायक सार।। 4।।
अर्हं अक्षर ब्रह्ममय, वाचक पन-परमेश।
सिद्धचक्रमद् बीज यह, नमूं सदा सर्वेश।। 5।।
सिद्धचक्र वर्णन करों, वसु-विधि कर्म विहीन।
मोक्ष-लक्ष्मी वास थल, समकितादि गुणलीन।। 6।।
विघ्नवर्ग झट भागते, शाकिनि भूत पलाय।
हालाहल निर्विष बने, जिनवर के गुण गाय।। 7।।

पुष्पाजलि क्षिपेन ।

जल-चन्दन अक्षत पुष्परु नेवज सुखकारी।
दीप धूप फल अर्घ्य लेय कञ्चन मणिथारी।।
मंगलीक रव-पूरित, श्री जिन मन्दिर माहीं।
जजूं सहस वसु नाम, महित जिननाम सदा ही।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनसहस्रनामेभ्य अर्घ्यम् ।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ (भाषा)

श्रीमान् लोकाधीश जिन, अरिहन्त शिव भगवन्त को।
स्याद्वादनायकअनन्तदर्शन, ज्ञान सुख बलवन्त को।।
कर नमन युगकर जोड़ श्री, जिनयज्ञविधि वरनन करूं।
श्री मलूसंघी समकिती जिय, पुण्यहित सब चित धरूं।। 1।।
त्रैलोक्य गुरु जिनपुगवों के, लिए स्वस्ति रहो सदा।
हो स्वस्ति उनके लिए जो, निज आत्मगुणरत सर्वदा।।

निज आत्मसहज प्रकाशमय, सत् दृष्टियों को स्वस्ति हो।
सुन्दर प्रसन्न अपूर्व वैभव शालियों को स्वस्ति हो।। 2।।
निर्मल प्रदीपित बोध अमृत, सेवियों को स्वस्ति हो।
निजभाव अरू परभावपूर्ण, विभासकों को स्वस्ति हो।।
त्रैलोक्यव्यापक आत्मा के, लिए स्वस्ति रहे सदा।
त्रैकाल विस्तृत आत्मा के, लिए स्वस्ति सर्वदा।। 3।।
करके यथा अनुकूलविधि से, द्रव्य की अवशुद्धता।
चाहूं यथाविधि नाथ निश्चय, भाव की भी शुद्धता।।
नाना सुभग अवलम्बनों का, ले सहारा अब यहां।
परमार्थ यज्ञसुपुरुष जिनका, यज्ञ करता हूं यहां।। 4।।
अरिहतं और पुराण, पुरुषोत्तम सुपावन देव हैं।
इत्यादि नाना वस्तु मय, जिननाथ तू इकमेव है।।
जाज्वल्य मान सुविमल केवल, ज्ञान वैश्वानर यहां।
ले पुण्य वैभव एकचित से, करू यज्ञविधि तथा।। 5।।

ॐ ह्री अर्ह यज्ञविधि प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रे परिपुष्पाजलिक्षिपेन।

हो स्वस्तिदाता जिन आदिदेव, हो स्वस्तिदाता अजितनाथदेव।
हो स्वस्तिदाता जिन संभवेश, हो स्वस्तिदाता अभिनन्दनेश।।
हो स्वस्तिदाता सुमति जिनेन्द्र, हो स्वस्तिदाता पद्मप्रभ महेंद्र।
हो स्वस्तिदाता च सुपार्श्वनाथ, हो स्वस्तिदाता जिनचन्द्रनाथ।।
हो स्वस्तिदाता प्रभु पुष्पदन्त, हो स्वस्तिदाता शीतल मोक्षकांत।
हो स्वस्तिदाता जिन श्रेयनाथ, हो स्वस्तिदाता वासुपूज्यनाथ।।
हो स्वस्तिदाता विमलेश देव, हो स्वस्तिदाता सुअनन्तदेव।
हो स्वस्तिदाता श्री धर्मनाथ, हो स्वस्तिदाता श्री शान्तीनाथ।।
हो स्वस्तिदाता विभु कुन्थुदेव, हो स्वस्तिदाता अरनाथ देव।
हो स्वस्तिदाता प्रभु मल्लि ईश, हो स्वस्तिदाता मुनिसुव्रतेश।।
हो स्वस्तिदाता नमिनाथ नाथ, हो स्वस्तिदाता जिन नेमिनाथ।
हो स्वस्तिदाता मम पार्श्वनाथ, हो स्वस्तिदाता अतिवीर नाथ।।

(प्रत्येक छन्द के अन्त मे थाल में पुष्प वर्षा करना चाहिए)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(द्यानतरायजी कृत)

प्रथमदेव अरहन्त, सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रन्थ महन्त, मुकतिपुर पन्थ जू।।
तीन रतन जगमाँहि, सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति प्रसाद, परमपद पाइये।।

दोहा·पूजो पद अरहन्त के,पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्रअवतरअवतर सवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ ठ ठ स्थापनम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भवभववषट् सन्निधिकरणम्।

सुरपति-उरग-नर नाथ तिनकर, बन्दनीक सुपद प्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्जवल, देख छवि मोहित सभा।।
वर नीर क्षीर समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर-मझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे।।
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
चन्दन शीतलता करैं, तपत वस्तु परबीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य· संसारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित सुविधि ठई।
अतिदृढ़ परम पावन यथारथ, भक्ति वर नौका सही।।
उज्जवल अखंडित सालितंदुल पुञ्ज धरि त्रय गुण जचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।

तन्दुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवन्त सुभव्य-उर, अम्बुज प्रकाशन भान हैं।
जे एकमुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं।।
लहि कुन्द कमलादिक पहुप, भव भव कुवेदन सो बचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर-जास आधीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य कामवाणविध्वंसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान है।।
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
नाना विधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्म घाती ज्ञानदीप, प्रकाश ज्योति प्रभावली।।
इह भांति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
स्वपर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकर हीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धिता करि, सकल परिमलता हंसै।।
इह भांति धूप चढ़ाय नित भव, ज्वलनमाहिं नहीं पचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।

अग्निमाँहि परिमल दहन चंदनादि गुण लीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी सकल फल गुणसार हैं।।
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, परम अमृत रस सचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण रस लीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्जवल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरू।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूं।।
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव-पंकति मचू।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
वसुविधि अर्ध संजोयेकै, अति उछाह मन कीन।
जासो पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ पदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।
चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनन्तधीर, कहवत के छयालिस गुणगंभीर।।
शुभसमवसरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर शीश धार।
देवाधिदेव अरहन्त देव, बन्दों मन वच तन कर सुसेव।।
जिनकी धुनि हैं ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत।।
सो स्यादवादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सुअंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय।।
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध।

संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिवपद निहार।।
गुण छत्तिस पच्चिस आठबीस, भवतारनतरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन वचन काय।।
कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवै।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ पदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिन के प्रसाद से सुखी रहें सब जीव।
याते तन मन वचन करि सेवें भव्य सदीव।।

(इति आशीर्वाद)

श्रीदेव-शास्त्र-गुरु पूजा

(युगलजी कृत)

केवलरवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन-देव परम-आगम गुरु को, शतशत वन्दन शत शत वन्दन।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मै अब तक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूं।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्या-मल धोने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहे, प्रतिकूल कहे यह झूठी मन की वृत्ती है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दनसम, शीतलता पाने आया है।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो ससार ताप विनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

उज्जवल हूं कुन्द धवल हूं प्रभु! पर से न लगा हू किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण रज में आया।।

ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन मे माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभू! भेद कहूं उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चितन कुछ, फिर सभाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊ, जो अन्तर कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

अबतक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हू।
पंचेन्द्रिय मन के षट रस तज, अनुपम रस पीने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुदारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

जग के जड़ दीपक को अबतक, समझा था मैंने उजियारा।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा।।
अतएव प्रभो! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हू।
तेरी अंतर लौ से निज अंतर, दीप जलाने आया हू।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझ को, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़केरी।।
यों भावकरम या भावमरण सदियों से करता आया हूं।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु! पर गंध जलाने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।
मैं शान्त निराकुल चेतन हूं है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मौह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निजरस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्ध समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्ध बनाऊंगा।
और निश्चित आप सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाऊंगा।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ पदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

स्तवन

बारह— भव-वन मे जीभर घूम चुका, कण-कण को जीभर-भर देखा।
भावनायें- मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिलीसुख की रेखा।।
अनित्य— झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन यौवन अस्थिर हैं, क्षणभंगुर पल में मुरझाये।।
अशरण— सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या।।
संसार— संसार महादुख सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन कामिनी प्रासादोमें।।
एकत्व— मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
अन्यत्व— मेरे न हुए ये मैं इन से अति, भिन्न अखण्ड निराला हूं।
निज में पर से अन्यत्व लिये निज समरस पीने वाला हूं।
अशुचि— जिसके श्रृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
आस्रव— दिन-रात शुभाशुभभावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।

संवर— शुभ और अशुभ की ज्वाला से झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
निर्जरा— फिर तप की शोधक बन्हिजगे, कर्मो की कड़ियां टूट पड़े।
सर्वाङ्ग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के झरने फूट पड़ें।।
लोक— हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या।।
बोधिदुर्लभ—जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभु! दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊं, मद-मत्सर मोह विनश जावे।।
धर्म— चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।
चरणो मे आया हूँ प्रभु वर, शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।।
सोचा करता हू भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा-ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अब तक ना समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुकें तव चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे।।
स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव वारिधि तिरते हैं।।
है गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिगदर्शन करने वाला है।।
जब जग विषयों में रचपच कर, गाफिल निद्रा मे सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष कंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त-निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिन्तन करते हो।।
करते तप-शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।
अन्तर-ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़िया।
भव-बन्धन तड़ तड़ टूट पड़े, खिल जावें अन्तर की कलियां।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधिया।

दिन-रात लुटाया करते हो, सम-सम की अविनश्वर मणियां।।
हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञानदीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति, त्याग के मूर्तिमान, शिवपथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ पदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(हुकम चन्द भारिल्ल कृत)

शुद्ध ब्रह्म परमात्मा, शब्द ब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमों जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ: स्थापनम्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु समूह। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय-विष भोगों, को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्य दृष्टि तेरी प्रभुवर, समता-रस पीने आया हूं।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इस को लौटाने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूं।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो ससारतापविनाशनाय चदन निर्वापमीति स्वाहा।

अभिमान किया अब तक जड़ पर अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूं जड़ मेरा है, यह, सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अब तक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा।

दिन-रात वासना में रह कर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।

पुरुषत्व गमाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बांध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटाना चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्ठान्न अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम भाव जगाने को, लाया हूं ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

पहिले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग मे उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।
प्रभु भेद-ज्ञान की आख न थी,क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ कर्म कमाऊं सुख होगा, मैंने अब तक यह माना था।
पाप-कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूं।
लेकर दशाग यह धूप, कर्म की धूम उडाने आया हूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों मे निश-दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त त्रस्त अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूं।
प्रभु सरस सुवासित ये जड फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हू।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमें सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, क्या इसकी है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूं अपने मे, प्रभु है अनर्घ मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

समयसार जिनदेव है, जिन प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ-गुरु, करे कर्म की हानि।।

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में जैसा जो तत्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सन्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्व दिखाया है।
स्याद्वाद नय अनेकान्त मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभु, विकथा में समय गमाया है।।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अब तक , जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था।
शुभ कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण मेंवही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी ध्यानी समरससानी, द्वादश-विधि तप नित करते जो।।

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योअनर्घपदप्राप्तये जयमाला अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चरित्र की खानि हैं, मैं वन्दौं धरि ध्यान।।
(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

श्री देवशास्त्र गुरु पूजा

(ब्र० चुन्नी लाल जी कृत)

(स्थापना, छंद गीता 28 मात्रा)

अरहंत प्रभु जो वीतरागी, तिन, गिराभवको हरे।
तप ज्ञान संयम लीन गुरु मम मुक्तिपथदाता खरे।।
सत देवश्रुतगुरु तीन रतन जुध्यान भविजन ध्याइये।
उनके बताए पथपर चल, निज परमपद पाईये।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्रावतरावतर सवौषट।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ ठः ठ ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निज आतममणि भाजन लिये समरससुधा रस धारकर
आया चरण में आज क्या भव पार होने में कसर।।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथं गुरू के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामनि स्वाहा।

बीते अनंतानंत कल्प विकल्प तृष्णा में गए।
इस चाह दावानल शमन हित मैं खड़ा चंदन लिए।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रथं गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चदन नि० स्वाहा।

उज्जवल अखंडित शालि तंदुल, पूजने लाया सही।
मिट जाए रागादिक सकल, मिल जाए वर अष्टम मही।।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथं गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योअक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

कैसे गहूं कलियां सुकोमल, महकती निज रूप में।
मैं भाव पुष्प लिये जजत, लगनी लगी चिद्रूप में।।
मैं देव श्री अरहंत पूजों, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रथ गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि० स्वाहा।

अगणित मनोहर व्यंजनो से शांत क्षुद्रोग न हुआ।
यह भूख दूषण टारने को, चरू लिए उद्यत हुआ।।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रथं गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरुं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्य नि० स्वाहा।

सच्चे समागम के बिना, निज-पर विवेक न हो कदा।
अब मोह तमके नाशनेको, दीप ले पूजौं सदा।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथ गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यी मोहाधकार विनाशनाय दीप नि० स्वाहा।

कर्तृत्व भोक्तृ भाव परका, राग द्वेष विकारिता।
अभिमान ममता धूप ले, समता, अनल में डारता।।
मैं देव श्री अरहंत पूजों, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथ गुरु के चरण सेवत सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूपं नि० स्वाहा।

सुन्दर तथा प्रासुक फलों से अर्चना हो आपकी।
मम आत्मगुण वैभव मिले, मिट श्रृंखला संताप की।।

मैं देव श्री अरहंत पूजौं जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथ गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि० स्वाहा।

क्षणमात्र भाव कषाय तज, सम भाव अमृत न पिया।
मिथ्यात्वमलसे चित्त को मैला किया भवदुख लिया।।
भवभ्रमण छूटै, कर्म टूटै, मिटे पुद्गल चाकरी।
इस हेतु पावन अर्ध लेकर भक्तियुक्त पूजा करी।।
मैं देव श्री अरहंत पूजौं, जिन गिरा वंदन करूं।
निर्ग्रंथ गुरु के चरण सेवत, सकल भव पातक हरूं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ नि० स्वाहा।

जयमाला

(चाल छद)

त्रयलोक प्रकाशक भानूँ, अरहंत जिनेन्द्र बखानूँ।
श्री वीतराग जगभूपा, सर्वज्ञ चिदानन्द रूपा।
मैं निज अनुभूति न जानी, नहिं आगम में मति ठानीं।
लक्षण निक्षेप प्रमाना, नय धार न तत्व पिछाना।।
आचार्य सु पाठक साधो, रत्नत्रय निधि सु अराधो।
छत्तिस पच्चिस अठवीसा, गुणगान दिगम्बर ईशा।।
वर ज्ञान ध्यान तपधारी, शम दम वैराग्य विचारी।
तिनको प्रणाम हमारो, मम जन्म मरण निरवारो।।

अष्टादश दोष विमुक्त देव, शत इन्द्र करत तुम चरण सेव।
देवाधिदेव अरहंत देव छयालिस गुणयुत शोभे सदैव।।
शुचि ज्ञान दर्श सुख वीर्य सार, शुभ समवशरण रचना अपार।
तन प्रभातनो मंडल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात।।
त्रय छत्र सिंहासन चंवर ढोर, चौसठ जु इन्द्र धर उभय ओर।
जय दिव्यध्वनि करती प्रकाश, षट् द्रव्य चराचर लोकवास।।
सत्ताइस तत्वों का प्रकाश, सब सुनत जीव होते हुलास।
तुमको जानत भ्रमतम विनाश, सम्यग्दर्शन का हो प्रकाश।।
भवि भागनवश हो ध्वनि विकास, खिरति विध विध भाषा विलास।।

जिनवाणी में शिवमग अभंग, गणधरने गूंथे द्वादशांग।।
अज्ञान तिमिरका करत अंत, भवि काल लब्धि पाते महंत।
जब चार घातिया होय अंत, तब जीव बने अरहंत संत।।
गुरु रूप दिगम्बर नग्न वेष, निंदा थुतिमें नहिं राग द्वेष।
नहिं लेते कभी तृण जल अदत्त, नहिं काम विषय धनमें ममत्त।।
सब शत्रु मित्र जानत समान, पर परणति नाशन अचल ध्यान।
बाईस परीषह सहत शांत; नहिं आत्मरूप में लेश भ्रांत।।
दशधर्म भावना भाय बार, नित करत अतापन योग सार।
तप रमा तनो तनमें प्रकाश, विज्ञान सार निर्मल विलास।।
मुनि ग्रीष्मकाल पर्वत मझार, तप उग्र तपत आनन्द धार
अरु कृशितकाय तपके प्रभाव समता परणति धरते स्वभाव।:
वर्षा ऋतु में तरु तल निवास जल धार गिरे तनसे उदास।
घनघोर गरज बिजुरी प्रकाश शिवमग पर करत सतत प्रयास।।
पुनि शीतकाल गिरि शिखर बास अथवानद सरवर तट निवास।
तन पै पड़ता शीतल तुषार तौ भी अविचल निज ध्यान धार।।
रहते गिरि कंदर शून्यवास वन गुफ मशान कोटर निवास।
भू-शयन शिला या काष्ठ सेज शशि किरण दीप पाषाण मेज।।
बदले नहि करवट संवरि काय कछु शयन जु पिछली रयनमांय।
सत देवशास्त्रगुरु रतन लोक हम नमन करत पद देत धोक।।

धता—

जय अर्हत् देवा आगम मेवा, गुरु दुख खेवा सुख देवा।
'चुन्नी' त्रय ध्यावे शीश नमावे, रतन सुहावे करि सेवा।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ समर्पयामी स्वाहा।

---

1) नद=नदी (2) गुफा=गुफा

श्री देव-शास्त्र-गुरु विदेहक्षेत्र विद्यमान तीर्थन्कर तथा अनन्तानन्त सिद्ध-परमेष्ठी पूजा

दोहा— देवशास्त्र गुरु नमनकरि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूं चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु समूह, विद्यमानविशंतितीर्थंकर समूह, अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी समूह। अत्रावतरावतर सवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ· ठ· स्थापनम् अत्र ममसन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टकम्

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल में शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक्, रत्नत्रयनिधि को नहिं पहिचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य विद्यमानविशति तीर्थङ्करेभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्य, जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने अब तक मैंने पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन समशीतलता पाने श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य विद्यमान विशतितीर्थङ्करेभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्य, ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद के बिना फिरा, जगत की लख चौरासी योनि में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिग लाया मैं।।
अक्षय निधि निज की पाने अब, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य, विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य·, अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्य·, अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगंधी से आतम ने शील-स्वभाव नशाया है।
मन्मथ वाणों से विंध करके, चहुगति दुःख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य· विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्य·,
कामबाणविध्वंसनाय, पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस-मिश्रित भोजन से ये भूख न मेरी शान्त हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य· विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्य·,
क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीप विनश्वर को, अब तक समझा था मैंने उजियारा
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अंधियारा।।
ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य·, अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्य ,
मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मो को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति-ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति-दहन प्रगटाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर सिद्ध-प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य , विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभय, अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्य·
अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता, बदाम, श्रीफल, लवंग चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतम रस, भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।
अब मोक्ष-महाफल पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध-प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः विद्यमान विशतितीर्थकरेभ्य अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट्म वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
ये अर्घ समर्पण करके मैं श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य· विद्यमान विशतितीर्थकरेभ्य अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो, अनर्घपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

नसे धातिया कर्म जु अर्हन्त देवा करे सुर असुर नर मुनि नित्य सेवा।
दरश ज्ञान सुख बल अनन्त के स्वामी, छियालीस गुण युत महा ईश नामी।।
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महा मोह विध्वंसिनी मोक्ष दानी।
अनेकान्तमय द्वादशागी बखानी, नमो लोक माता श्री जैन वाणी।।
विरागी अचाराज उवज्झाय साधू, दरश ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेषधारी सु एकाविहारी, निजानन्द मंडित, मुकति मय प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर बीस राजें, विरहमान वन्दु सभी पाप भाजें।
नमूं सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

छन्द

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तरले रे।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य विद्यमान विशतितीर्थकरेभ्य· अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्य· अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पंच-परमेष्ठी पूजा

अर्हन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारण हार नमन।।
मन वच काया पूर्वक करता, हूं शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन।।
निज-आत्मतत्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट-द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्धरूप का हो दर्शन।।

ॐ ह्रीं अरहन्त सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिन्।
अत्र अवतर अवतर सवौषट् आहवाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठः ठ· ठ·
स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

मैं तो अनादि से रोगी हूं, उपचार कराने आया हूं।
तुम सम उज्जवलता पाने को, उज्ज्वल जल भर कर लाया हूं।।
मैं जनम जरा मृत नाश करूं, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाए हैं।
निज शान्त-स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं।।
शीतल चन्दन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं-पच परमेष्ठिभ्यो ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्य-शक्ति निज अटक रही।।
तन्दुल हैं धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूं स्वामी।
हे पंच परम परमेष्टी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम-व्यथा से घायल हूं, सुख की न मिली किञ्चत् छाया।
चरणो में पुष्प चढ़ाता हूं, तुम को पाकर मन हर्षाया।।

मैं काम-भाव विध्वंस करूं, ऐसा दो शील-हृदय स्वामी।
है पंच-परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वसंनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

मै क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुद्या रोग मेटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्री पच परमेष्ठीभ्यो क्षुद्या रोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामिति स्वाहा।

मोहान्ध महाअज्ञानी मैं, निज को पर का कर्त्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूं, मोहांधकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो मोहाधकार विनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मो की ज्वाला धधक रही, संसार बढ रहा है प्रतिफल।
सवंर से आश्रव को रोकूं, निर्जरा सुरभि महके पल-पल।।
मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मो का हनन करूं स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मतत्व का मनन करूं, चिन्तवन करूं निज चेतन का।
दो श्रद्धा ज्ञान चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष-निकेतन का।।
उत्तम फल चरण चढ़ाता हू, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूं।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं, पुंज जलाने आया हूं।।
यह अर्घ समर्पित करता हूं, अविचल अनर्घपद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भवदुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं पच-परमेष्ठिभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादस दोष रहित जिनवर, अर्हन्त देव को नमस्कार।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरञ्जन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकन्त, भगवन्त सिद्ध को नमस्कार।।
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदयधार।
हे मुक्ति वधु के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनिमुद्रा महान्, श्री उपाध्याय को नमस्कार।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार।।
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिन देव चरणदर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सुखी बने मानव जीवन।।
निज पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूं।।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूं।।
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परणति को ही पहचानूं।
पर परणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्व को ही जानूं।।
जब ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता विकल्प तज, शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊंगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अर्हन्त महापद पाऊगां।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाउगां।
सम्यक् पूजाफल पाने को, अब निज-स्वभाव में आऊगां।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।
तब तक चरणों में ध्यान रहे, जब तक न प्राप्त हो मुक्ति-सदन।।

ॐ ह्रीं अर्हन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पच परमेष्ठिभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल-गान करूं।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मन्त्र का ध्यान करूं।।

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

बीस तीर्थंकर पूजा

दीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थङ्कर बीस।
तिन सबकी पूजा करू, मन वच तन धरि प्रीत।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा:! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा:! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ: ठ:।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

इन्द्र-फणींद्र-नरेन्द्र-वंद्य, पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार, गुण हैं अविकारी।।
क्षीरोदधि सम नीरसों, (हो) पूजों तृषा निवार।
सीमंधर जिन आदि दे, स्वामि बीस विदेह मंझार।।
श्रीजिनराज हो, भव तारणतरण जिहाज।

ॐ ह्रींसीमंधर-युग्मन्धर-बाहु-सुबाहु-सन्जातक-स्वयप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विद्यमानविंशतितीर्थकङ्करेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय-जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के जीव पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये।।
बावन चंदन सो जजूं (हो) भ्रमन तपत निरवार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी।
तातै तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी।।
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजो तुम गुणसार।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थकङ्करेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भविक सरोज-विकाश निंद्य-तमहर रविसे हो।
जति-श्रावक आचार कथन को तुम्हीं बड़े हो।।
फूल सुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

काम-नाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो।
क्षुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो।।
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) पूजों भूखविडार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहि भर्यो है।
मोह-महातम घोर, नाश परकाश कर्यो है।।
पूजों दीप प्रकाशसो (हो) ज्ञानज्योति करतार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म आठ सब काठ, भार विस्तार निहारा।
ध्यान अग्निकर प्रगट, सरब कीनो निरवारा।।
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलैं निरधार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्यो अष्टकर्म विध्वसनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभ अहंकार भरे हैं।
सबको छिनमें जीत, जैनके मेरु खरे हैं।।
फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछित फलदातार ।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविशतितीर्थकड़रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों द्रव्य, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है।।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।। सीमन्धर०।।

ॐ ह्रीं विद्यमान विशतितीर्थकड़रेभ्योअनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा— ज्ञान सुधाकर चन्द, भविक-खेत हित मेघ हो।
भ्रम-तम भान अमन्द, तीर्थंकर बीसों नमों।।

चौपाई

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
बाहु-बाहु जिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे।।
जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं।।
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं।।
भद्रबाहु भद्रनिके करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं।।
वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभद्र महाभद्र बखानै।
नमो जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरज बलधारी।
धनुष पांचसै काय विराजैं, आयु कोडिपूरव सब छाजै।
समवसरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारनतरण जिहाजा।।
सम्यक, रत्नत्रयनिधि दानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत इन्द्रनिकरि वंदिति सोहैं, सुर नर पशु सबके मन मोहैं।।

दोहा— तुमको पूजैं वंदना, करै धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय।।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो महाअर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सीमन्धर पूजा

भव-समुद्र सीमित कियो, सीमंधर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रगट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी।।
अन्तर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव।
अरे भवान्तक! करो अभय हरलो मेरा भव।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ· ठ स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिन ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

प्रभुवर तुम जल-से शीतल हो, जल-से निर्मल अविकारी हो,
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुमही तो मल-परिहारी हो।
तुम सम्यग्ज्ञानजलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो,
भविजन-मन-मीन प्राणदायक भविजन-मन-जलज खिलाते हो।
हे ज्ञानपयोनिधि सीमंधर! यह ज्ञान प्रतीक समर्पित है,
हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है।।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो,
भव-ताप निकंदन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भव-दुख-हर हो।
जल रहा हमारा अन्तःस्तल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से,
यह शान्त न होगा हे जिनवर, रे! विषयों की मधुशाला से।
चिर अन्तर्दाह मिटाने को, तुमही मलयागिरी चन्दन हो,
चन्दन से चरचूं चरणांबुज, भवतपहर! शत-शत वन्दन हो।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूं,
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं तेरे पद का प्रत्याशी हूं।
अक्षत का अक्षत-संबल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने,
अक्षत-विज्ञान दिया जग को, अक्षत-ब्रह्माण्ड किया तुमने।
मैं केवल अक्षत अभिलाषी अक्षत अतएव चरण लाया,
निर्वाण-शिला के संगम-सा धवलाक्षत मेरे मन भाया।

ॐ ह्रीं सीमंधरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं,
सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।
निज अन्तर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से,
चैतन्य-विपिन के चितरन्जन, हो दूर जगत की छाया से।
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पवेलि से यह लाया,
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्द रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं,
तुम मुक्त क्षुधा के वेदन से, षटरस का नाम निशान नहीं।
विध-विध व्यंजन विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी,
आनन्द सुधारस निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी।
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हो दूर क्षुधा ये अंजन से,
क्षुत्पीडा कैसे रह लेगी? जब पाये नाथ निरजन से।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मय-विज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक प्रकाशक हो,
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो।
तुम हो प्रकाश के पुञ्ज नाथ! आवरणो की परछाह नहीं,
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि, पर चिन्मयता को आंच नहीं।
ले आया दीपक चरणों में, रे! अन्तर अलोकित कर दो,
प्रभु तेरे मेरे अनतर को, अविलम्ब निरन्तर से भर दो।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय मोहाधकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

धू-धू जलती दुःख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल हैं,
बेचेत पड़े सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभंजन है।
यह धूम धूमरी खा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में,
अज्ञानतमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रग-रलियों में।
संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुये उर्ध्वगामी जग से,
प्रगटे दशांग प्रभुवर तुम को, अन्तः दशाग की सौरभ से।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभवृत्ति एकांत दुःख, अत्यंत मलिन संयोगी है,
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चय चैतन्य विरोधी है।
कांटों सी पैदा हो जाती, चैतन्य सदन के आंगन में,
चंचल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में।
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु! हों शांत शुभाशुभ ज्वालायें,
मधुकल्प फलों-सी जीवन में प्रभु! शांति लतायें छा जावें।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल-जल सा प्रभु निज स्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए,
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये।
अविराम-भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने,
क्षुत्-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए,
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वैदेही हो देह में, अत. विदेही नाथ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह मे, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।

हे ज्ञानस्वभावी सीमंधर, तुम हो असीम आनन्द रूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचंड।
हो स्वयं अखण्डित कर्म शत्रु को, किया आपने खण्ड-खण्ड।।
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतम-स्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान।।
तुम दर्शनज्ञान-दिवाकर हो, वीरज मंडित आनन्दकंद।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्ण चन्द।।
पूरव विदेह में हे जिनवर, हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान।।
श्री कुन्द कुन्द आचार्य देव को, मिला आपसे दिव्य ज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान।।

पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार।।
दे गये हमे वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार।।
मैं हूं स्वभाव से समयसार, परणति हो जावे समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समयसार।।

ॐ ह्रीं श्री सीमधरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमालार्घम्।

अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ (भाषा)

भूत भविष्यत् वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊं।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोकके मन लाऊं।।

ॐ ह्रीं त्रिकाल सम्बन्धी तीसचौबीसी, त्रिलोक सम्बन्धी, कृत्रिमा कृत्रिमचैत्य चैत्यालयेभ्य अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्य भक्ति आलोचन चाहूं, कायोत्सर्ग अघनासन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीन लोक में, राजत हैं जिन बिम्ब अनेक।।
चतुर्निकाय के देव जजें ले, अष्टद्रव्य निजकुटुम्ब समेत।
निज शक्ति अनुसार जजू मैं, कर समाधिपाऊं शिव खेत।।

इत्याशीर्वाद । पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्।

पूर्व मध्य अपरान्ह काल में, पूर्वाचार्यो के अनुसार।
देव वन्दना करूं भाव से, सकलकरमकी नाशनहार।।
पंच महागुरु सुमरन करके कायोत्सर्ग करूं सुखकार।
सहजस्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊगा अब मैं भवपार।।

(कायोत्सर्गपूर्वक णमोकार मन्त्र का नौ बार जाप करें)

कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-पूजार्घ्य

कृत्याकृत्रिम चारु चैत्यनिलयान् नित्य त्रिलोकीगतान्।
वंदे भावन व्यतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्।।
सद्गंधाक्षत पुष्प दाम चरुकैः सद्दीप धूपै· फलै·।
र्द्रव्यैनीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये।। 1।।

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबन्धि जिनबिंबेभ्योऽर्घ निर्वपा०।

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम्।। 2।।

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृताना देवराजार्चिताना,
जिनवर-निलयानां भावतोअहं स्मरामि।। 3।।

जम्बू—धातकि—पुष्करार्ध—वसुधा-क्षेत्र—त्रये ये
भवाश्चंद्राम्भोज-शिखण्डिकंठ-कनक-प्रावृड्घनाभा जिना:।
सम्यक्ज्ञान—चरित्र—लक्षणधरा दग्धाष्ट—कर्मेन्धना:
भूतानागत—वर्तमान—समये तेभ्यो जिनेभ्यो नम: ।। 4।।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर—रुचिके कुण्डले मानुषाङ्के।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।। 5।।

द्वौ कुन्देन्दु—तुषार—हार—धवलौ द्वाविन्द्रनील—प्रभौ,
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वो च प्रियंगुप्रभौ।।
शेषा· षोडश—जन्म मृत्यु-रहिता· सन्तप्त-हेम-
प्रभास्ते संज्ञान-दिवाकरा: सुर-नुता: सिद्धि प्रयच्छन्तुन: ।। 6।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकसबधिकृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयेभ्योऽर्घ निर्वपा०।

इच्छामि भंते! चेइयभक्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं।अहलोय-तिरियलोय-उड्ढल्लोयम्मि किट्टिमाणि जाणि जिणचे-इयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय वाणविंतर-जोइसिय- कप्पवासिय त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुवेणदिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्णाणेण णिञ्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदति णमस्संति। अहमवि इह संतो तत्थ संताई णिच्चकालं अच्चेमि वंदामि णमस्सामि। दुक्खकखओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि मरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

अथ पौर्वाह्निक माध्याहिनक आपराह्निक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थ भावपूजा-वन्दना-स्तवसमेंत श्रीपंचमहागुरुभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्।

ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।
णमो अरहंताणं, णमों सिद्धाणं, णमों आइरियाणं
णमों उवज्झायाणं णमों लोए सव्वसाहूणां।

अकृत्रिम चैत्यालय पूजा

आठ क्रोड़ अरु छप्पन लाख। सहस सत्तावण चतुशत भाख।
जोड़ इक्यासी जिनवर थान। तीन लोक आह्वान करान।। 1।।

ॐ ह्री त्रैलोक्यसवध्यष्टकोटिषट पचाशल्लक्ष सप्तनवतिसहस्त्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालयानि अत्र अवतर-अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ· ठ। अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट्।

क्षीरोदधिनीर उज्ज्वल क्षीरं, छान सुचीरं भरि झारी।
अति मधुर लखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन गुण भारी।।
वसुकोटि सुछप्पन लाख सत्तावण, सहस चार शत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुँजग भीतर, पूजत पदले अविनाशी।। 1।।

ॐ ह्री त्रैलोक्य सवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्षसप्तनवति सहस्त्र-चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि पावन चन्दन बावन, ताप बुझावन घसि लीनो।
धरि कनक कटोरी द्वै करजोरी, तुम पद ओरी चित दीनो।। वसु०।। 2।।

ॐ ह्रीं त्रेलोक्य संवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्रत्रु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे हम लीने।
धरि कंचन थाली, तुम गुण माली, पुजविशाली करदीने।। वसु०।। 3।।

ॐ ह्रीं त्रेलोक्यसवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ पुष्प सुजाती, है बहुभांति, अलि लिपटाती लेय वरं।
धरि कनक रकेबी, करगहलेवी, तुमपद जुग की भेट धर ।। वसु०।। 4।।

ॐ ह्रीं त्रेलोक्यसवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु. शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो· पुष्पाणि निर्वपामीति स्वाहा।

खुरमां जु गिंदोड़ा, बरफी, पेड़ा, घेवर, मोदक भरि थारी।
विधि पूर्वक कीने, घृतपयभीने, खण्ड मैं लीनै सुखकारी।। वसु०।। 5।।

ॐ ह्रीं त्रेलोक्यसवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यात महातम् छाय रह्यो हम, निजभव परिणति नहिं सूझै।
इह कारण पाकै दीप सजाकैं, थाल भराकैं हम पूजैं।। वसु०।। 6।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबध्यष्टकोटिषट् पंचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु· शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध कुटाकैं, धूप बनाकैं, निजकर लेकैं, धरि ज्वाला।
तसु धूम उड़ाई, दशदिशि छाई, बहुमहकाई, अति आला।। वसु०।। 7।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसबध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु· शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो· धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम, छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ताप्यारे दाखवरं।
इन आदि अनौखे, लखि निरदोखे थापल जोखे भेट धरं।। वसु०।। 8।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसबध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु· शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्यो फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल चदन तुदल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल, थाल रचौं।
जयघोष कराऊँ, बीन बजाऊँ, अर्घ चढाऊँ खूब नचौं।। वसु०।। 9।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसबध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सहस्त्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालभ्यो अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक अर्घ

चौपाई

अधोलोक जिन आगम साख। सात कोटि अरु बहुतरि लाख।
श्री जिनभवन महा छवि देई। ते सब पूजों वसुविध लेई।। 1।।

ॐ ह्रीं अधोलोक सबधिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिम श्री जिन चैत्यालेभ्योअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

मध्यलोक जिन मन्दिर ठाठ। साढ़े चार शतक अरु आठ।
ते सब पूजौं अर्घ्य चढ़ाय, मन वच तन त्रय जोग मिलाय।। 2।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसबधि चतु शताष्टपचाशत् श्रीजिन चैत्यालेभ्योऽर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल छन्द

उर्ध्वलोक के माहिं भवनजिन जानिये। लाख चौरासी सहस सत्तावण मानिये।।
तापै धरि तेईस जजौं सिर नायकैं। कंचन थाल मझार जलादिक लायकैं।।

ॐ ह्रीं उर्ध्वलोक सबंधचतुरशीतिलक्षसप्तनवति सहस्त्र त्रयो विंशति श्री जिन चैत्यालेभ्योअर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहस सत्यावण मानिये।
सतच्चारपै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।।

तिहुंलोक भीतर सासते सुर असुर नर पूजा करैं।
तिन भवन को हम अर्घ्य लेकैं, पूजि हैं जग दु.ख हरैं।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु शतैकाशीति अकृत्रिमजिन चैत्यालेभ्य-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा:— अब वरणो जय मालिका सुनो भव्य चित लाय।
जिन-मन्दिर तिहुं लोक के, देहु सकल दरशाय।।

पद्धरी छन्द

जय अमल अनादी अनन्त जान, अनिर्मित जु अकीर्तम अचलथान।
जय अजय अखण्ड अरूप धार, षटद्रव्य नहीं दीसै लगार।।
जय निराकार अविकार होय, राजत अनन्त परदेश सोय।
जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय, दशदिशा माँहि इह विधि लखाय।।
यह भेद अलोकाकाश जान, ता मध्य लोक नभ तीन मान।
स्वयमेव बन्यो अविचल अनन्त, अविनाशी अनादि जु कहत सत।।
पुरुषा आकार ठाडो निहार, कटि हाथ धारि द्वै पग पसार।
दक्षिण उत्तर दिशि सर्व ठौर, राजू जु सात भाख्यो निचौर।।
जय पूर्व अपरदिश घाटबाधि, सुन कथन कहु ताको जु साधि।
लखि श्वभ्रतलैं, राजू जु सात, मधिलोक एक राजू जु साच।।
फिर ब्रह्म सुरग राजू जु पांच, भूसिद्ध एक राजू जु रहात।।
दश चार ऊंच राजू गिनाय, षट् द्रव्य लये चतुकोण पाय।।
तसु वातवलय पटपटाय तीन, इह निराधार लखियो प्रवीन।
त्रसनाडी तामधि जान खास, चतुकोन एक राजू जु व्यास।।
राजू उतंग चौदह प्रमान, लखि स्वयं सिद्ध रचना महान।
तामध्य जीव त्रस आदि देय, निज थान पायतिष्ठे भलेय।।
लखि अधोभाग में श्वभ्रथान, गिन सात कहे आगम प्रमान।
षट् थान माहि नारकि बसेय, इक धम्र भाग फिर तीन भेय।।
तसु अधो भाग नारकि रहाय, पुनि उर्ध्व भाग यह थान पाय।
बस रहे भवन व्यतर जु देव, पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव।।
तिंह नान गेह जिनराज भाख, गिनसात कोटि बहत्तरि जुलाख।
ते भवन नमों मन वचन काय, गति श्वभ्रहरणहारे लखाय।।
पुनि मध्य लोक गोला अकार, लखिद्वीप उदधि रचना विचार।

गिन असंख्यात भाखे जुसंत, लखि संभुरमण सबके जुअंत।।
इक राजु व्यास में सर्वजान, मधिलोक तनों इह कथन मान।
सब मध्य द्वीप जम्बू गिनेय, त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय।।
इन तेरह में जिन-धाम जान, शात चार अठावन हैं प्रमान।
खग देव असुर नर आय-आय, पद पूज जांय सिर नाय-नाय।।
जय उर्ध्वलोक सुर कल्पवास, तिहूंथान छजै जिन-भवन खास।
जय लाख चौरासी पर लखेय, जय सहस सत्यानव और ठेय।।
जय बीस तीन पुनि जोड़ देय, जिन-भवन अकीर्तम जान लेय।
प्रति भवन एक रचना कहाय, जिन बिम्ब एक शत आठ पाय।।
शत पच धनुष उन्नत लसाय, पदमासनयुत वर ध्यान लाय।
शिर तीन छत्र शोभित विशाल, त्रयापादपीठ मणि जडितलाल।।
भामंडल की छवि कौन गाय, पुनि चंवर ढुरत चौसठि लखाय।
जय दुन्दुभिरव अद्भुत सुनाय, जय पुष्प वृष्टि गन्धोद काय।।
जय तरु अशोक शोभा भलेय, मंगल विभूति राजत अमेय।
घट तूप छजै मणिमाल पाय, घट धूम्र धूम दिग सर्व छाय।।
जय केतुपंक्ति सौहे महान, गन्धर्व देव गण करत गान।
सुर जनम लेत लखि अवधि पाय, तिहंथान प्रथम पूजन कराय।।
जिन गेह तणो वरणन अपार, हम तुच्छ बुद्धि किम लहत पार।
जय देव जिनेसुर जगत भूप, नमि 'नेम' मंगै निज देहुँ रूप।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसवध्यष्टकोटिषट् पचाशल्लक्ष सप्तनवति सहस्त्र चतु· शतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालेभ्योऽर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा.— तीन लोक मे सासते श्री जिन भवन विचार।
मनवचतन करि शुद्धता, पूजों अरघ उतार।।

तिहु जग भीतर श्री जिन मंदिर बने अकीर्त्तम अति सुखदाय।
नरसुर खग करि वन्दनीक, जे तिनको भविजन पाठ कराय।।
धन धान्यादिक संपति तिनके, पुत्र पौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुख खग इन्द्र होयके, करम नाश शिवपुर सुख थाय।।

(इत्याशीर्वाद)

सिद्ध पूजा (द्रव्याष्टक)

उर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरति-दिग्गताम्बुज-दल-तत्सन्धि-तत्वान्वितम्।
अन्तः पत्र तटेष्व नाहतयुतं ह्रींकार संवेष्टितं
देव ध्यायति य. स मुक्ति-सुभगो वैरीभ-कंठीरवः।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठन्! अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निरस्त-कर्म-सम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽह परमात्मानममूर्तमन उपद्रवम्।।
(सिद्धयन्त्रस्थापनम्)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यं हान्यादि-भाव-रहितं-भव-वीत-कायम्।
रेवापगा-वर-सरो-यमुनोद्भवानां नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्द-कन्द-जनकं धन-कर्म मुक्त सम्यक्त्व-शर्म-गरिम जननार्ति-वीतम्।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि चन्दनानां गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने ससारतापविनाशनाय चदन निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वावगाहन-गुणं, सुसमाधि-निष्ठं सिद्धंस्वरूप-निपुणं कमलं विशालम्।
सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानां पुञ्जैर्यजे शलि-निभैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसज्ञ द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मन्दार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीना पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो व्यपेतं ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम
क्षीरान्न-प्राज्य-वटकै रस-पूर्ण गर्भै-र्नित्यं यजे चरुवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

आतंक-शोक-भय-रोग-मद-प्रशान्तं निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा-निवेशम्।
कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदातै-र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहाधकारविनाशनाय दीप र्निपामीति स्वाहा।

पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड-प्रदीपम्।
सद्द्रव्य गन्ध-घनसार-विमिश्रितानां धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धासुरादिपति-यक्ष-नरेन्द्र-चक्रै-र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनै: सुवन्द्यम्।
नारंगि-पूग-कदलि-फल-नारिकेलैःसोऽहं यजे वरफलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

गन्धाढय सुपयो मधुव्रतगणै संगम वरं चन्दनम्,
पुष्पौघ विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महाअर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानोपयोग विमलं विश्वदात्म रूपं,
सूक्ष्म स्वभाव परमं यदनन्तवीर्यम।
कर्मोघ-कक्ष दहनं सुख शस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्ध चक्रं।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने महाअर्घ निर्वपामिति स्वाहा।

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापु श्रियं शाश्वतीं—
यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थकड़राः।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य-विशदा व्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्।।

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

जयमाला

विराग-सनातन-शान्त-निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धि-समूह।।
विदूरित संसृतिभाव निरग, समामृत पूरित देव विसंग।

अबन्ध कषायविहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
निवारितदुष्कृत-कर्म-विपाश, सदामल केवल-केलि-निवास।
भवोदधि-पारग शान्त विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।
अनत-सुखामृत-सागर धीर, कलंक-रजो-मलभूरि-समीर।
विखण्डित-काम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
विकार-विवर्जित तर्जित-शोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक।
विहार विराव विरंग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
रजोमल खेद-विमुक्त विगात्र, निरन्तर नित्य सुखामृत पात्र।
सुदर्शन-राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
नरामर-वंदित निर्मल-भाव, अनन्त-मुनीश्वर-पूज्य-विहाव।
सदोदय, विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापर शंकर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशक विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
जरा-मरणोज्झित बीत-विहार, विचिन्तित निर्मल निरहकार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।
विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।

असम-समयसार चारु चैतन्य-चिह्नं
पर-परणति-मुक्त पद्मनन्दीन्द्र वन्द्यम्
निखिल-गुण-निकेत सिद्ध-चक्र विशुद्ध
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम्।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो, समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो, जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवत हो।।
ध्यान अगनिकर कर्म कलक सबै दहे, नित्य निरजनदेव सरूपी ह्वै रहे।
ज्ञायक-ज्ञेयाकार ममत्व निवारिकै, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं।।

दोहाः— अविचल-ज्ञान प्रकाशतें, गुण अनन्त की खान।
ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान।।
अविनाशी आनन्दमय, गुण पूरण भगवान।
शक्ति हिये परमात्मा, सकल पदारथ जान।।

(इत्याशीर्वाद)

श्री सिद्ध पूजा

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिने! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिने! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिने! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्यों-ज्यो प्रभुवर जलपान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश की प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणो में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

तन का उपचार किया अब तक, उस पर चन्दन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन सम है पाया।
होकर, निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिने ससारताप विनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो।।
ले शालिकणों का अवलम्बन, अक्षय पद! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतिये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के बैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढे सब का।।
प्रमुदित्त मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मै आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वसनाय पुष्प निवर्पामीति स्वाहा

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भर पेट मनुज क्यो मरता है।।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हू आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था, पर क्यों कर, जड़ चेतन सर्जन करता है।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद ज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहाधकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।।

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हू अखण्ड चिद्पिण्डचन्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
यह धूप नहीं, जड़कर्मों की रज आज उड़ाने मै आया।
होकर निराश सब जग भर से अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

शुभकर्मों का फल विषय-भोग, भोगों मे मानस रमा रहा।
नित नई लालसाये जागी, तन्मय हो उनमें समा रहा।।
रागादि विभाव किए जितने आकुलता उनका फल पाया।
होकर ,निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनी, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलिया, की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ कर्मो का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया।।
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों मे है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूं आया।
होकर निराश सब जग भर से अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्धपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा— आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्मप्रकाश।
आनन्दामृत पान कर, मिटे सभी की प्यास।।

जय ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्यरूप।
तुम हो अखण्ड अनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड।।

रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार।।
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव रमणी के हृदय-हार, नित करत रहत निज में विहार।।
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपददाता जो तत्वज्ञान।।
पाया नहिं मैं उसको पिछान, उल्टा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान।।
शुभ-अशुभ-राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान्।
प्रभु अशुभ कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय।।
जो धर्म ध्यान आनन्दरूप, उसको माना मैं दुःख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग।।
इच्छा निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह।
आकुलतामय संसारसुख, जो निश्चय से हैं महादुःख।।
उसकी ही निश दिन करी आश, कैसे कटता संसार पास।
भव-दुख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान।।
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान मांग, कैसे मिटता संसार स्वांग।।
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गए सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रगटयो प्रभु भेदज्ञान, मैंने तुमको लीना पिछान।।
तुम पर के कर्त्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सबके एक साथ।
तुम भक्तो को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत।।
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुमको बस पिछान।
वह पाता है केवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान।।
विपदामय परपद है निकाम, निज पद ही है आनन्द धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निज पद को पाऊं हे जिनाय।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा— पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूं अपना भाव।
निज स्वभाव में थिर रहूं, मेटो सकल विभाव।।

(इत्याशीर्वाद.। परिपुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

श्री चौबीसी पूजा

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज्य पूजित सुरराय।।
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व, प्रभु वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्रावतार सवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरातचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट्।

मुनि मन सम उज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा।।
चौबीसो श्रीजिनचन्द, आनन्द कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग-भरी।
जिन-चरनन देत चढाय, भव-आताप हरी।। चौबीसो०।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो ससारतापविनाशनाय चदनम्।

तदुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे।
मुकताफल की उनमान, पुज-धरौ प्यारे।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान।

वर-कज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन अग्र-धरौ गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे।। चौबीसो०।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो कामवाण विध्वसनाय पुष्पम्।

मन-मोहन-मोदक आदि, सुन्दर सद्य वने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिर मोह क्षय जाय, ज्ञान-कला जागै।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातेभ्यो मोहाधकार विनाशनाय दीपम्।

दशगन्ध हुताशन माँही, हे प्रभु खेवत हों।
मिस धूम करम जरिजाँहि, तुमपद सेवत हों।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपम्।

शुचि पक्व सुरस फलसार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलम्।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।। चौबीसों०।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घं।

जयमाला

दोहा:— श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत।
गाऊँ गुणमाला अबैं, अजर अमरपद देत।।

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनिस्वच्छकरा।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसौं जिनराज वरा।।
जय ऋषभदेव रिषिगननमंत। जय अजित जीत वसुअरि तुरंत।
जय सम्भव भवभय करत चूर। जय अभिनन्दन आनन्दपूर।।
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुति तनरसाल।
जय जय सुपास भवपासनाश। जय चन्द चन्दतनदुतिप्रकाश।।
जय पुष्पदन्त दुतिदत सेत। जय शीतल शीतल गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपूज्य।।
जय विमल विमलपददेनहार। जय जय अनन्त गुनगन अपार।
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत। जय शांति शांति पुष्टी करेत।।
जय कुंथु कुंथु आदिक रखेय। जय अरजिन वसुअरि छय करेय।
जय मल्लि मल्लि हतमोहमल्ल। जय मुनिसुव्रत व्रत शल्लदल्ल।।
जयनमिनित वासवनुत सपेम। जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम।
जय पारसनाथ अनाथनाथ। जय वर्द्धमान शिवनगर साथ।।
चौबीस जिनन्दा आनन्दकन्दा। पापनिकन्दा सुखकारी।
तिन पदजुगचन्दा उदय अमन्दा। वासव वंदा हितकारी।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो चतुर्विंशति जिनेभ्यो महाअर्घ्यम्।

सोरठा : भक्ति मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराज वर
तिन पद मन वचधार, जो पूजैं सो शिव लहें

(इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलि क्षिपेत)

श्री चौबीस जिन पूजा

(ब्र० चुनी लाल जी कृत)

स्थापना

वृषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पदम, सुपार्श्व, प्रभु।
चन्द्र, पुष्प, शीतल, श्रेयास श्री, वासुपूज्य श्री विमल विभु।।
अनंत, धर्म, श्री शान्ति, कुन्थु, अरनाथ मल्लि सुब्रत प्रभु।
नमिनाथ श्री नेमिनाथ जी, पार्श्वनाथ महावीर प्रभु।।
ये चौवीसो धर्म धुरन्धर, तीर्थ प्रवर्तक अन्तिम वीर।
मै आया गुण पूजन करने, कमल विराजो मन मन्दीर।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिन समूह! अत्र अवतर अवतर सवोषट्।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिन समूह। अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठ ठ।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिन समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अच्छे बुरे की कल्पना, पर द्रव्यही मे मानकर।
सुख दुक्ख से चेतन जलाथा, राग द्वेष विकार कर।।
त्रय रोग जन्म जरा मरण, पाया विरुद्ध उपाय कर।
निर्मल सुजल की धार देता, शांतिकर जिन शांतिकर।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिनेभ्यो ससार मूलछेदनार्थ जल नि० स्वाहा।

हिसा परिग्रह त्याग मे, आनन्द दर्शाया प्रभो।
मैं रागवश बंधन किया, ससार को पाया विभो।।
रूई लपेटी आग सम, इन अक्ष विषय कषायमे।
सुख शाति, ढूंढ़ी न मिली, अज्ञान ममतोपाय में।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिनेभ्यो भवआताप विनाशनाय चन्दन नि० स्वाहा।

उज्जवल अखडित शालि तदुल, लाया मैं पूजन लिए।
हो जायगा रागादि सभी छिन, तेरी गुण पूजा किए।।
ससार से भयभीत हूं, अब तो अरज सुन लीजिए।
अक्षय परम पद होय ऐसे, सुखद वर को दीजिए।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिनेभ्यो धवल पद प्राप्तये अक्षत नि० स्वाहा।

कैसे चुनूं कलियां सुकोमल, महकती निज क्षेत्र में।
उनको हटाते वृक्ष से, मुरझाती दिखती नेत्र में।।
चिरकाल से दुख मदन का, सहता रहा हूं हे प्रभो।
मनमथ नसै निज सुख लसै, वरदान ऐसा दो विभो।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो अपगतवेद प्राप्तये पुष्प नि० स्वाहा।

अगणित पदार्थो से न मेरी, भूख अब तक शम भई।
खाली हुई फिरसे भरी, त्रैलोक्य की इच्छा जई।।
आकुल व्याकुल दुखद पद में, भक्ष्याभक्ष्य नहीं गना।
अनुपम रसायन से मिटा दो, ऽनंत भव की यातना।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो इच्छा रोग विनाशनाय नैवेद्य नि० स्वाहा।

हम भावना चारों ग्रहण कर, चित्त को उज्वल करें।
दिन रैन श्वासों में सदा, अर्हंत पद ध्याया करें।।
तब शुद्ध आत्म सुज्योति से, ममदीप अंतर का जले।
उज्ज्वल प्रकाश लहुं सुखद, अज्ञान तम सब ही टलै।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो अज्ञान मोहांधकार विनाशनाय दीप नि० स्वाहा।

कर्ता व भोक्ता पर क्रिया में, मान्यता भ्रम से भरी।
अभिमान करते जड़ क्रिया से राग द्वेषा नल खरी।।
ममता अहंता धूप दह से, आत्म ज्ञान प्रकाश हो।
मम भाव मरण मिटे प्रभो! बस पूर्ण मेरी आश हो।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो विकारभाव विनाशनाय धूप नि० स्वाहा।

हो पक्क फलवा हरित फल, सब सचित फल इकसार है।
कैसे चढांऊं योगिपति तूं, मोक्ष फल दातार है।।
नहीं इन्द्र चक्री वासुपद के, भोग की वांच्छा धरूं।
मैं मोक्ष फल की आश लेकर, आपकी पूजा करूं।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो निजानन्द प्राप्तये फल नि० स्वाहा।

नहीं पुण्य के अरु पाप के, दातार हर्ता तुम प्रभु।
जिय पुण्य बंध करे स्वयं, पाकर निमित्त तुमको विभु।।
है जन्म मरण चतुर्गति दुख, तज हुं शल्य दुखाकरी।
भव भ्रमण छूटै कर्म टूटै, मिटे पुद्गल चाकरी।।
चारो गति दुख भव भ्रमण, मिट जाय दो पंचम गति।
इस हेतु पावन अर्ध लाया, दो जिनेश्वर सन्मति।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनेभ्यो अनन्त चतुष्टय प्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

पद्धरी छंद मात्रा 16

चौबीस तीर्थंकर परम देव, शत इन्द्र करत नित चरण सेव।
इनमे त्रय पद धारक जिनेश, शाति कुन्थु अर जिन महेश।।1।।
तीर्थंकर चक्री काम देव, नहीं होता है इक जिय सदेव।
श्री वासु पूज्य मलि नेमिनाथ, पारस वीर बाल यति सनाथ।।2।।
जिन पिण्ड चिदानद ज्ञान रूप, सब कर्म रहित महिमा अनूप।
दृग् ज्ञान शर्म वीरज अनत, गुण छयालिस से शोभे महन्त।।3।।
ज्ञायक ज्योति अद्भुत प्रसार, ध्वनि प्रकट करे सब तत्वसार।
सत्ताइस तत्त्व कियो प्रकाश, षट् द्रव्य चराचर लोक वास।।4।।
पुनी सप्त तत्त्व पचास्तिकाय, षट द्रव्य पदारथ नव बताय।
जिय पुद्गल धर्म अधर्म काल, इन सबका आश्रय नभ विशाल।।5।।
षट् द्रव्य रहत नित एक खेत, परिणति किरिया सब भिन्न चेत।
चेतन लक्षण ज्ञायक स्वरूप, पुद्गल वर्णादिक जड स्वरूप।।6।।
गतिमान धर्म परिणति सहाय, थिति, हेतु अधर्म सदा सहाय।
अवगाहन लक्षण गगन जान, परिवर्तन काल रहे महान।।7।।
पुद्गल नभ धर्म अधर्म जीव, पचास्ति काय रहते सदीव।
तातै कहते हैं कायवान, द्विकादिक नन्त मिले प्रमाण।।8।।
है मिलन गलन पुद्गल विकार, इसकथ अणु विध-विध प्रकार।
जिय चेतन शेष अचेत जान, अणु मूर्तिक शेष अमूर्तमान।।9।।
अब धर्म अधर्म प्रदेश जीव, आसख्य काल इक कहत शीव।
नभ नत अणु विध-विध प्रकार, है सख्यासख्य अनन्त कार।।10।।
जिय पुद्गल की है भिन्न चाल, इनसे निर्मित संसार जाल।
जिय पुद्गल नादि बधरूप, जल पय जैसे बंधन स्वरूप।।11।।
प्रागर्जित कर्मोदय निमित्त, अज्ञान भाव इच्छा सहित।
पर कर्त्ता से मिथ्यात्व जान, तामे भोक्ता सुख दुख पिछान।।12।।
तातै उपजत रागादि भाव, वह कर्म चेतना अशुध भाव।
उदयागत सकल उपाधि भाव, जिय मानत उनको निज स्वभाव।।13।।
ता कारण मूर्छित हो निबद्ध, निज भाव करत फिर उभयबद्ध।
तातै भव भ्रमण करे सदाय, दुख पावन जन्म मरण जराय।।14।।
क्षय उपशम आदिक सकल भाव, सब कर्म जनित नहिं परम भाव।
उनको नहीं जानत मुग्ध जीव, समकित से दूर रहे अतीव।।15।।

जिय पुदगल के सयोग पाय, जीवादि पदारथ नव दिखाय।
पुण्य पाप बंध आश्रव अजीव, संवर निर्जर अरु मोक्ष जीव।। 16।।
उनको निक्षेप प्रमाण भंग, नय स्याद्वाद जानत अभंग।
सब निज निज गुण पर्यायवास, नहीं कोई किसी में जा निवास।। 17।।
हे ज्ञेय उपादे तत्त्व सार, निज परम भाव दृष्टि विचार।
परके निमित्त व्यवहार जोय, वह है अलीक नहीं रूप सोय।। 18।
तातैं नव तत्त्व करो श्रद्धान, सम्यक दर्शन का विषय जान।
इनको समझे सम्यक् प्रकार, समकित प्रगटे दुर हो विकार।। 19।।
स्वात्मानुभूति साधन स्वरूप, है परम विशुद्धी साध्य रूप।
अनुभूति मे ज्ञायक स्वभाव, नहीं कुछ भी दिख पाता विभाव।। 20।।
नहीं नय निक्षेप प्रमाण भग, अनुभव मे नाहिं विकल्प संग।
आत्मानुभूति निर्जर पिछान, संवर से मोक्ष बने विधान।। 21।।
जाने जिस क्षण नहीं पर स्वरूप, लख परिणति नियमित नित्यरूप
चेतन परिणति नित ज्ञान रूप, सब जिय शक्ति ज्ञायक स्वरूप।। 22।।
नहीं गहै ज्ञेय पर कृत स्वभाव, तदपि जानै नित सब विभाव।
ध्याता ध्यावे निज ज्ञान रूप, तज ध्यान रुध्येय विकल्प रूप।। 23।।
तब पाता है अद्वैत भान, तिष्ठो निज में निज एक भान।
अविचल स्वरूप हो "चुनी लाल", अद्वैत भाव में हो खुशहाल।।24।।

चौबीस जिनदा, आनंदकंदा पापनिकंदा सुखकारी।
छूटै भवफंदा, दुखनिकदा, स्वरूपचन्दा अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विशति जिनेभ्यो जयमाला अर्घ नि० स्वाहा।

श्री आदिनाथ पूजा

अडिल्ल छंद

कर्म भूमि की आदि रिषभजिनवर भये,
धर्म पथ दरशाय सक न जग सुख दये।
तिनके पद उर ध्याय हरष मन में धरूं,
अत्र तिष्ठ जिन राजचरण पूजा करू,

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर सम्वौषट्!
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

सुदरी छंद

परम पावन उज्ज्वल लाय के, जल जिनेश्वर चरण चढ़ाय के।
जन्म मरण त्रिदोष सबै हरू, रिषभदेव चरण पूजा करू।।1।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जल।

सरस चंदन गधं सुहावनो, परम शीतल गुण मन भावनो।
जन्म ताप तृषा दु ख को हरू, रिषभदेव चरण पूजा करूं।।2।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय भव ताप विनाशनाय चदन।

शरद इन्दु समान सुहावनो, अमल अक्षत स्वच्छ प्रभावनों।
सहज रूप सुधी रमणी वरूं, रिषभदेव चरण पूजा करूं।।3।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताये अक्षत।

कुसुमरत्न सुवर्णमई करो, कनक भाजन मे बहुते भरो।
मदनबान महा दुख को हरू, रिषभदेव चरण पूजा करूं।।4।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय कामवाण विध्वसनाय पुष्प।

सरस मोदक पावन लीजिये, चरूं अनेक प्रकार सुकीजिये।
असदवेद्य क्षुधा दुख को हरूं, रिषभदेव चरण पूजा करूं।।5।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य।

रतन दीप अमौलिक लीजिये, निज सुयोग्य मनोहर कीजिये।
अतुल मोह महातम को हरू, रिषभदेव चरण पूजा करूं।।6।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप।

सरस धूप सुगंध सुहावनी, अगर आदिक द्रव्य सुपावनी।
धूप खेय दुखद विधि को हरूं, रिषभदेव चरण पूजा करूं।। 6।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूप।

सरस मिष्ट फलावलि लीजिये चरण जिनवर भेट करीजिये।
सहज रूप सुधी रमणी वरूं, रिषभदेव चरण पूजा करूं।। 8।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय मोक्ष फल प्राप्तये फल०।

जल फलादिक द्रव्य मिलाय के, कनक थाल सु अर्घ वनाय के।
निज स्वभाव अरि विधि को हरूं, रिषभदेव चरण पूजा करूं।। 9।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताये अर्घ०।

पंच कल्याणक

(मोतियादाम छन्द)

अषाढ़ वदी द्वितीया दिन जान, तजो सरवारथ सिद्धि विमान।
भयौ गरभागम मंगल सोय, नमूं जिन को नित हर्षित होय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अषाढ़ वदी द्वितीया गर्भ कल्याणक प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

सुचैत वदी नवमी दिन जान, भयौ शुभ तादिन जनम कल्याण
सुरासुर इन्द्र शचीजुत आय, करौ गिरिशीश महोत्सव जाय।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय चैत्र वदी नवम्या जन्म कल्याणक प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

वदीनवमी शुभ चैत्य बताय, प्रभु ढिंग देवरिषीश्वर आय।
करी बहु भक्ति नवाय सुभाल, लह्यौ तप तादिन श्रीजिन हाल।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय चैत्र वदी नवम्या तप कल्याणक प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

वदी शुभ ग्यारस फाल्गुन जान, सुतादिन घाति हने भगवान्।
करौ वर केवल ज्ञान प्रकाश, हरो जग को भ्रम मोह विलास।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय फाल्गुन वदी एकादशम्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

वदी शुभ माघ चतुर्दसि जान लह्यो प्रभु ने शिवथान महान।
करौ बहु उत्सव इन्द्र नरेन्द्र, भरौ मम आश सदा जिन चंद्र।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय महा वदी चतुर्दशया मोक्ष मगल प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा— आदि धर्म करता प्रभु, आदि ब्रह्म जगदीश।
तीर्थंकर पद जिहि लयौ, प्रथम नवांऊ शीश।।

(भुजग प्रयात छद)

नमो देव देवेन्द्र तुम चर्ण ध्यावै, नमो देव इन्द्रादि सेवक रहावै।
नमो देव तुमको तुम्हीं सुक्ख दाता, नमो देव मेरी हरो दुख असाता।।1।।
तुम्ही ब्रह्मरुपी सुब्रह्मा कहावो, तुम्ही विष्णु स्वामी चराचर लखावो।
तुम्हीं देव जगदीश सर्वज्ञ नामी। तुम्ही देव तीर्थेष नामी अकामी।।2।।
सुशंकर तुम्ही हो तुम्ही सुक्खकारी, सुजन्मादि त्रयपुर तुम्ही हो विदारी।
धरैं ध्यान जो जीव जग के मझारी, करैं, नाश विधि को लहें ज्ञान भारी।।3।।
स्वय भू तुम्ही हो महा देव नामी, महेश्वर तुम्ही हो तुम्ही लोक स्वामी।
तुम्हे ध्यान में जो लखे पुण्य वता, वही मुक्ति को राज विलसै अनंता।।4।।
तुम्हीं हो विधाता तुम्ही नन्ददाता, नमै जो तुम्हे सो सदानन्द पाता।
हरो कर्म के फंद दुख कन्द मेरे, निजानंद दीजे नमों चर्ण तेरे।।5।।
महा मोह को मारि निज राज लीनो, महा ज्ञान को धारी शिव कीनो।
सुनो अर्ज मेरी रिषभदेव स्वामी, मुझे वास निज पास दीजे सुधामी।।6।।

दोहा—नाभिराय मरूदेवी सुत, सदा तुम्हारी आस।
मन वच काय लगाय के नमें जिनेश्वरदास।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

।।आडिल्ल छन्द।।

वर्तमान जिनराय भरत के जानिये, पचकल्याणक धारि गये शिव थानिये।
जो नर मन वच काय प्रभू पूजै सही, सो नर दिव सुख पाय लहै अष्टम मही।।

इत्याशीर्वाद' पुष्पाजलि क्षिपेत्'

श्री जिन पूजा

(श्री ज्ञान चन्द जी कृत)

धर्म हुआ क्षीण, प्रभु तब अवतरे, भव्यो को सबोध, आप सदृश करे।
श्री आदिनाथ जिनराज, अबै मो उर बसो, करो धर्म प्रकाश, कलक सबै नशो।।

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाधिदेव भगवान आदिनाथ जिनेन्द्र' अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाधिदेव भगवान आदिनाथ जिनेन्द्र' अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाधिदेव भगवान आदिनाथ जिनेन्द्र' अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सो धर्म मुनिनकर धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।

छठी ढाल

मुनि और अरहन्त-सिद्ध का स्वरूप तथा शीघ्र आत्महित करने का उपदेश

(हरिगीता-छन्द)

षटकाय जीव न हननतैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा, न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शील धर, चिद्‌ब्रह्म में नित रमि रहैं।।
अन्तर चतुर्दस भेद बाहर-संग दशधा तें टलैं।
परमाद तजि चौ कर मही लखि, समिति ईर्य्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरै।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।
छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनें घर अशन को।
लैं, तप बढावन हेत, नहिं तन पोषते, तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संजम उपकरण, लखिकै गहैं लखिकै धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन, मल-मूत्र-श्लेषम परिहरैं।।
सम्यक् प्रकार निरोध-मन वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गंध तथा फरस-अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग-विरोध-पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।
समता सम्हारैं थुति उचारैं, वदना जिनदेव की।
नित करैं श्रुतरति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अंबर आवरन।
भूमांहि पिछली रयन में, कछु शयन एकाशन करन।।
इक बार दिनमें लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत, परिषह, सो, लगे निज ध्यान में।
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निंदन थुतिकरन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन।।

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहि भवसुख कदा।।
यों है सकल संयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस हाथ प्रगटै आपनी निधि, मिटे पर की प्रवृत्ति सब।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निजके हेतु, निजकर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मझार कछु भेद न रह्यौ।।
जह ध्यान ध्याता ध्येय कौ, न विकल्प, वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां।।
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत, ये तीनधा, एकै लसा।।
परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत, अनुभव मे दिखै।।
दृग ज्ञान सुख बल मय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिड चड अखंड सगुण-करड च्युत पुनि कलनितैं।।
यो चित्य निज मे थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रकै नाहीं कह्यौ।।
तबही शुक्लध्यानाग्नि करि, चऊ घातिविधि काननदह्यौ
सब लख्यौ केवलज्ञानकरि, भवलोकको शिवमग कह्यौ।
पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहि अष्टम भू बसै।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसै।
ससार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गए।
अविकार अचल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।
निजमाहि लोक, अलोक गुण, परजाय, प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादी भ्रमण पच, प्रकार तजि वर सुख लिया।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़ भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जगमल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि साहस-ठानि यह सिख आदरौ।

जबलौं न रोग जरा गहै-तब लौं झटिति निज हित करौ।
यह राग आग दहे सदा तातै समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो, पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल! होहू सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै।।

ग्रन्थ निर्माण का समय तथा आधार

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल बैशाख।
कर्यौ तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख।। 1।।
लघु धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावौ भव-कूल।। 2।।

सामायिक पाठ

महान् आध्यात्मिक विभूति अमितगति आचार्य विरचित
सस्कृत सामायिक पाठ के आधार पर हिन्दी पद्यानुवाद

अनुवादक—श्री युगलजी कोटा

प्रेमभाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।। 1।।
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।। 2।।
सुख दुख बैरी बन्धुवर्ग में, काच कनक में समता हो।
वन उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहीं ममता हो।। 3।।
जिस सुन्दरतम-पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन-पथ।। 4।।
एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूं वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।। 5।।
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे मिट जावें सद्भावों से।। 6।।

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शांत।। 7।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।। 8।।
कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिन मुझ पर छाया।
पी पी कर, विषयों की मदिरा, मुझ में पागलपन आया।। 9।।
मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर निन्दा गाली चुगली जो, मुंह पर आया, वमन किया।। 10।।
निरभिमान उज्जवल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।। 11।।
मुनि, चक्री, शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
परम वेद पुरान जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।। 12।।
दर्शन ज्ञान — स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।। 13।।
जो भव दुख का विध्वंसक हैं, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान।। 14।।
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलक त्रैलोक्य—दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप।। 15।।
निखिल—विश्व के वशीकरण, वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रय ज्ञान स्वरूपी, परमदेव मम हृदय रहे।। 16।।
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे यह हृदय पवित्र।। 17।।
कर्म-कलंक- अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त।। 18।।
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता दिव्य प्रकाश।
स्वय ज्ञान मय स्वपर प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त।। 19।।
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आ[illegible] अन्त से रहित, शांत, शिव, परमशरण मुझको वह आप्त।। 20।।
जे[illegible] अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
[illegible] विषाद-चिन्ता सब, जिसके, परम शरण मुझको वह देव।। 21।।
तृण चौकी, शिल शैल शिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।

संस्तर, पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।। 22।।
इष्ट-वियोग अनिष्ट योग मे, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम।। 23।।
बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमे।। 24।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे है उसके पुरुषार्थ।। 25।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वाभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर हे, कर्माधीन विनाशी है।। 26।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो-सुत तिय मित्रों से कैसे?
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे?।। 27।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष मार्ग का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।। 28।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालो को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर, फिर लीन उसी में हो।। 29।।
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।। 30।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि।। 31।।
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, अमितगति वह देव महान।
शाश्वत निज मे अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।। 32।।

सर्वज्ञ देव कथित छहों द्रव्यों के स्वतन्त्रता दर्शक

सामान्य गुण

1. अस्तित्व गुण

कर्त्ता जगत का मानता, जो कर्म या भगवान को,
वह भूलता हैं लोक में, अस्तित्वगुण के ज्ञान को;
उत्पाद व्ययुत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुण के योग से, कोई नहीं जग में मरे।। 1।।

2. वस्तुत्वगुण

वस्तुत्वगुण के योग से ही, द्रव्य की स्व स्वक्रिया,
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया;
सामान्य और विशेष से, कर रहें निज-निज काम को,
यों मानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को।। 2।।

3. द्रव्यत्वगुण

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को, जग में पलटता है सदा,
लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण सम्पदा;
स्व-द्रव्य में मोक्षार्थि हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा,
हो नाश जिससे आजतक की, दुःखदायी भवकथा।। 3।।

4. प्रमेयत्वगुण

सब द्रव्य-गुण प्रमेय से, बनते विषय हैं ज्ञान के,
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से, जानियो यो ध्यान में,
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज, यह ज्ञान उसको जानता,
है स्व-पर सत्ता विश्व में, सदृष्टि उनको जानता।। 4।।

5. अगुरुलघुत्वगुण

यह गुण अगुरुलघु भी सदा, रखता महत्ता है महा,
गुण द्रव्य को पररूप यह, होने न देता है अहा! ;
निज गुण-पर्यय सर्व ही, रहत सतत निजभाव में,
कर्त्ता न हर्त्ता अन्य कोई, यों लखो स्व-स्वभाव में।। 5।।

6. प्रदेशत्वगुण

प्रदेशत्वगुण की शक्ति से, आकार द्रव्यों को धरे,
निज क्षेत्र मे व्यापक रहे, आकार भी स्वाधीन है ;
आकार है सब के अलग, हो लीन अपने ज्ञान में,
जानो इन्हें सामान्य गुण, रक्खो सदा श्रद्धान में।। 6।।

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी मे लीन रहो।। 1।।
विषयों की आशा नहि जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।। 2।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं।
परधन-वनिता* पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूँ।। 3।।
अहकार का भाव न रखूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।। 4।।
मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन—दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग—रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रखूं मैं उन पर, ऐसी परणति हो जावे।। 5।।
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।। 6।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षो तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे।। 7।।

---

* महिलाएं वनिता की जगह भर्ता पढ़े।

होकर सुख में मगन न फूलें, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे।।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे।। 8।।
सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़, जग-नित्य नये मंगल गावे।।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्मफल सब पावे।। 9।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे।। 10।।
फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख सङ्कट सहा करें।। 11।।

प्रेम पीयूष

(बाल ब्रह्मचारिणी कुमारी कौशल जी)

प्रेम पीयूष पिलाओ भगवन, प्रेम पीयूष पिलाओ।
तन मन जीवन तमाच्छन्न है, पावन ज्योति जगाओ ।। टेक।।
प्रेम का पंथ निराला इस पर, प्रभु चलना सिखलाओ।
मैं तू का कुछ भेद नहीं, वह एक ज्योति दिखलाओ ।। 1।।
हे साधु शरण इस अहंकार की, सेना मार भगाओ।
एक तत्व दर्शन से सबका, मन प्रमुदित हो जाओ।। 2।।
गुरु निष्ठा आदर्श प्रेम की, द्युति को अमर बनाओ।
इस तन का कण-कण व्यापक हो, विश्व प्रेम बन जाओ।। 3।।
पचम परम चरणाम्बुज के प्रति, नित सब शीश झुकाओ।
शरणागत अर्हन्त सिद्ध को, साधु धर्म मन भाओ।। 4।।
क्रोध मान ज्वालाए दोनो, मिल अमृत बन जाओ।
क्षमा शोच मार्दव आर्जव बन, शीतलता फैलाओ।। 5।।

मैं कौन हूं?

'अमूल्य तत्व विचार'

श्रीमद् रायचन्द्र कृत

अनुवादक युगलजी (कोटा)

एम.ए., साहित्यरत्न

(हरिगीत छंद)

बहु पुण्य-पुंज-प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला,
तो भी अरे! भवचक्र का, फेरा न एक कभी टला।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर-भावमरण,-प्रवाह में चकचूर है।। 1।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये-
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धि? कुछ नहिं मानिये।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुमको अरे! इसका विवेक विचार है।। 2।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहां भी प्राप्त हो,
यह दिव्य अन्तः तत्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो।
'पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया,
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुःख भरा।। 3।।
मैं कौन हूं, आया कहां से, और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूं परिहार क्या?
इसका विचार विवेक पूर्वक शान्त होकर कीजिये,
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धांत का रस पीजिये।। 4।।
किसका वचन उस तत्व की उपलब्धि में शिवभूत है,
निर्दोष नर का वचन रे! बस स्वानुभूति प्रसूत है।
तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये,
सर्वात्म में समदृष्टि द्यो, यह वच हृदय लिख लीजिये।। 5।।

।। चतुर्विंशति स्तव ।।

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णर-पवर-लोय-महिऐ, विहुयरयमले महाप्पण्णे।। 1।।
लोयस्सु-ज्जोययरे, धम्म तिथंकरे, जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।। 2।।
उसहमजियं च वंदे, संभवम-ऽभिणंदणं, च सुमईच।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे।। 3।।
सूविहं च पुप्फयतंम, सीयल सेयंस वासुपुज्जंच।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संति च वंदामि।। 4।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मलिं च सुव्वयं च णमिं।
वदामि अरिटटणेमिं, तह पासं बड्ढमाणं च।। 5।।
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीण जर-मरणा।
चउवीस पि जिणवरा, तित्थयरा में पसीयन्तु।। 6।।
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च में बोहिं।। 7।।
चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहिय पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।। 8।।

तीर्थंकर एवं अनन्त सामान्य केवली जिन भगवन्तो की मैं स्तुति करता हूं, जो कि मनुष्य व देवलोक मे विधूत कर्म मल से रहित होने से महानता को प्राप्त हुए हैं।। 1।। धर्म तीर्थ का लोक में प्रकाशन करने वाले ऐसे तीर्थ रूप जिन भगवान की मैं वन्दना करता हू। कर्म रूप शत्रुओं को नष्ट करने वाले अरहत और केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों की मै स्तुति करूगा।।2।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु, सुपार्श और चन्द्रप्रभु जिन की मैं वन्दना करता हूं।। 3।। सुबिधि, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त धर्म, शान्ति, कुन्थु, अरह, मल्लि, मुनिसुब्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर को मैं नमस्कार करता हूं।। 4-5।।

ऐसे मेरे द्वारा स्तुत कर्ममल और जरा-मरण रहित जिन मुझ पर प्रसन्न हों।। 6।। जिनकी महिमा कीर्ति रूप से गाई गई है, ऐसे लोक में उत्तम सिद्ध भगवान मुझे आरोग्य, ज्ञान, समाधि तथा बोधि लाभ दें।। 7।। चन्द्र जैसे निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रभावान, सागर की तरह गम्भीर ऐसे सिद्ध पुरुष मुझे सिद्धि प्रदान करें।। 8।।

।। श्रुत भक्ति ।।

देवी सरस्वती तू, जिन देवकी दुलारी।
स्याद्वाद नाम तेरा, ऋषियों की प्राण प्यारी।।
सुर नर मुनीन्द्र सब ही, तेरी सुकीर्ति गावें।
तुम भक्ति में मगन हो, तो भी न पार पावें।।
इस गाढ़ मोह मद में, हमको नहीं सुहाता।
अपना स्वरूप भी तो, नहिं मातु याद आता।।
ये कर्म-शत्रु जननी, हमको सदा सताते।
गति चार माहिं हमको, नित दुख दे रुलाते।।
तेरी कृपा से माँ कुछ, हम शांति लाभ कर लें।
तुम दत्त ज्ञान बल से, निज पर पिछान करलें।।
हे मात तुम चरण में, हम शीश को झुकावें।
दो भक्तिदान हमको, जबलों न मोक्ष न पावें।।

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतन्त्र निष्चल निश्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम। टेक।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं राग वितान। 1।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमितशक्ति सुख ज्ञाननिधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान। 2।
सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रूष दुख की खान।
निजको निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहि, लेश निदान। 3।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम। 4।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर कृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम। 5।

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी।। टेक।। ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी।। 1।। ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी।
तुव भूलत भव भटकत, सहत-विपति भारी।। 2।। ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुं गति दुखहारी।। 3।। ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी।। 4।। ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानधन, सहज शांतिचारी।
टले टलें सब पातक, परबल बलधारी।। 5।। ॐ

आत्मधुन

सच्चिदानंद हूं, ज्ञानानन्द, दर्शनानन्द हूं, सहजानन्द। टेक।
चेतनामात्र हूं, हू अखण्ड पिण्ड।
हूं अनन्त शक्ति सत्य, रत्न का करण्ड।। सच्चिदा०। 1।
ध्रुव निरंजन अमल, ज्योति का पुञ्ज।
निर्विकार निराकार, सदानन्दकुञ्ज।। सच्चिदा०। 2।
आप ही में आपसे आप ही निर्द्वंद।
शोक रोग, राग द्वेष, कोई नहीं फन्द।। सच्चिदा०। 3।
पूर्ण में ही, पूर्ण से, पूर्ण का प्रवाह।
पूर्ण था, पूर्ण रहेगा, सदा अथाह।। सच्चिदा०। 4।
ज्ञानमात्र, ज्ञानपूर्ण, ज्ञानमय अभिन्न।
हूं निरंग निस्तरंग, ज्योति हूं अखिन्न।। सच्चिदा०। 5।

आत्म-रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं।। टेक।
हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानधन, स्वयं पूर्ण।
हूं सत्य सहज आनन्दधाम, मैं सहजानंद० मैं दर्शन०। 1।
हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं।
परका न प्रवेश न कार्ययहां, मैं सह०, मैं दर्शन०। 2।
आऊं उतरूं रमलूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सह० मैं दर्शन०। 3।

मंगलतंत्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्ध चिदस्मि
मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूप में अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानधन हूं, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं अतः कृतार्थ हूं।
मैं सहज आनन्दमय हूं, मेरे स्वरूप में कष्ट नहीं, अतः स्वयंतृप्त हूं।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्ध चिदस्मि।

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे। टेक।
ज्ञानसे, ज्ञान में, ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का, इकदम विलय हो।
भ्रान्ति का नाश हो, शान्ति का वास हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 1।
सर्व गतियों में, रह गति से न्यारे, सर्व भावों में, रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 2।
सिद्धि जिनने भी, अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 3।
देह कर्मादि, सब जग से न्यारे, गुण व पर्यय के भेदों से पारे।
नित्य अन्तःअचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 4।
आपका, आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयों में, नित श्रेय तू है।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 5।

अयि आत्मन्! ज्ञानामृत आनन्दघनजी

अयि आत्मनूज्ञानामृत, आनन्दघनजी, आनन्दघनजी,
स्वपरभाव पिछान, परिहर पर-शरणम्।।1।।
विश्व व्यवस्थित सत्‌छै, कोई नहीं करैजी, कोई नही करैजी,
द्रव्य नियमसर होय, परिहर पर-शरणम्।।2।।
अपनाया स्व ना हुवै, कोई पर द्रव्यजी, कोई पर-द्रव्यजी,
मिथ्या मोटो पाप, परिहर पर-शरणम्।।3।।
होना है सो होय, सी, कुछ नहीं चलैजी, कुछ नहीं चलैजी,
यह निश्चय दृढ़ जान, परिहर पर-शरणम्।।4।।
ज्ञान ही नित अरिहत छै, चेतन सिद्धजी, चेतन सिद्धजी,
शुद्ध उपयोग सुझाव, परिहर पर शरणम्।।5।।

ज्ञान स्वयं महावीर है

ज्ञान स्वयं महावीर है, आत्म सुदर्शन धार।
चिदानन्दघन आप है, अपनी ओर निहार।।1।।
विश्वमर्यादा अटल है, नहीं कोई पलटनहार।
ज्ञाता बन बन सुखी थया, आपा समझनहार।।2।।
ना कोई पर का कर सके, ना पर से कोई होय।
स्वयं किए बिन ना रहे, विश्व नियम यह जोय।।3।।
अपना सब कुछ आप में, पर का सब पर मांय।
देख पराई परिणती, मत उसमें लपटाय।।4।।
शरणार्थी पर-लक्ष है करे राग उपयोग।
पुरुषार्थी स्व-लक्ष है, करे ज्ञान उपयोग।।5।।
खुद तो निमित्त बनावता, पर से सम्बन्ध रचाय।
दोष निमित्त का मानता, कुछ भी सूझे नांय।।6।।
नदी नीर वत अज्ञ धन, हर कोई हर लेत।
कूप नीरवत् विज्ञधन, गुण बिन बूंद न देत।।7।।
शन्ति निज कर्तव्य है, लक्ष रखो निज मांय।
बाहिर अपना क्या धरा, अपना अपने मांय।।8।।
समझ स्वयं बैरन बनी, पर ही पर दरकार।
समझ स्वयं सम्यक् बनी, कर आतम-सत्कार।।9।।

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाउं।
देहान्त के समय में, निज आत्मा ही ध्याउं।। 1।।
करके क्षमा सभी को, सबसे क्षमा कराऊं।
निश्चय क्षमा ग्रहण कर, निज आत्मा को ध्याऊं।। 2।।
त्यागूं सकल परिग्रह, मिथ्यात्व और कषाय।
समता का भाव धरकर निज आत्मा ही ध्याऊं।। 3।।
हो यदि विकल्प तो मैं, परमेष्ठी पांचों ध्याऊं।
फिर निर्विकल्प होकर, निज आत्मा ही ध्याऊँ।। 4।।
वैराग्य-ज्ञान की तब, अनुपम कला जगी हो।
जड़ देह, कर्म मुक्त, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 5।।
जीने की हो न इच्छा, मरने की हो न वांछा।
बस ज्ञाता-दृष्टा रहकर, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 6।।
कर दोष का आलोचन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान।
निर्दोष होय सबविध, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 7।।
चैतन्य मेरा प्राण, चैतन्य मम समाधि।
चिदलीन कर्म मुक्त, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 8।।
हो ज्ञानचेतना बस, चेतूं न कर्म, कर्मफल।
उपसर्ग केवलीवत्, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 9।।

श्री जिनेन्द्र स्तुति

तुम्हारी महिमा कही न जाय। नाथ की महिमा कही न जाय।।
महिमा कही न जाय, तुम्हारी महिमा कही न जाय।। टेक।।
जिन के दर्शन से निज दर्शन, करत चित्त हर्षाय।
जो जिन है सो ही मै चेतन, यह अनुभव उर आय।। तुम्हारी०।। 1।।
स्वसंवेदन ज्ञान कार्य है, नाथ रहे दर्शाय।
ज्ञायकघन की अनुपम शान्ति, भोग यही मन भाय।। तुम्हारी०।। 2।।
पुण्य-पाप सबही विभाव हैं, अनुभव आत्म स्वभाव।
बलिहारी ध्रुव ज्ञायकधन की, जिन ध्रुव कीने निज भाव।। तुम्हारी०।। 3।।
चेतन मम सर्वस्व है, नाथ दिखायो मोय।
आत्म तृप्ति, संतुष्टि रति पर, बलि-बलि जाउं तोय।। तुम्हारी०।। 4।।

ओम आदिनाथ, भगवान तुम्हे, नमूँ मैं, देवाधिदेव, जगदीश, तुम्हे, नमूँ मैं
त्रैलोकय, शान्ति कर देव, तुम्हे नमूँ मैं, स्वामिन नमूँ, जिन नमू, भगवन नमूँ मैं
नमूँ आदिनाथ, उजियारो, नमूँ आदिनाथ, उजियारो जी
नमूँ आदिनाथ, उजियारो, नमूँ आदिनाथ, उजियारो
प्रभू, चौड़े दोष हमारा, प्रभू, दीसे दोष हमारा जी
प्रभू, जानू दोष हमारा, प्रभू, मानूं दोष हमारा
प्रभू, सर्व ही दोष हमारा, प्रभु, खमजो दोष हमारा
म्हारा जीवन, निर्मल होवे, म्हारा जीवन, सम्यक होवे
अहो, म्हारा जीवन, उज्जवल होवे, म्हारे दोष, क्षमा प्रभू करजो
हां-हा, म्हारे दोष, क्षमा प्रभू, करजो
नमू सर्व परम आत्मा, सीमंधर महावीर
खमज्यो सर्व ही दोष मम, विनवूँ अंतस धीर
देह क्षता, जेनी दशा, वरते देहातीत
आ प्रभू जी ना चरण मां, हो वन्दन अगणीत
आ प्रभू श्री ना चरण मां, हो वन्दन अगणीत

वन्दना

ज्यति जय नमू आदि भगवान, जयति जय होवे आदि का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं सुमति भगवान, जयति जय होवे सुमति का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं शीतल भगवान, जयति जय होवे शीतल का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं विमल भगवान, जयति जय होवे विमल का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं धर्म भगवान, जयति जय होवे धर्म का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं शान्ति भगवान, जयति जय होवे शान्ति का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं नेमी भगवान, जयति जय होवे नेम का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं पार्श्व भगवान, जयति जय होवे पार्श्व का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं वीर भगवान, जयति जय होवे वीर का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं सिद्ध भगवान, जयति जय होवे सिद्ध का ज्ञान,

श्री वासुपूज्य जिनपूजा

छन्द रूपकवित्त

श्री मत वासुपूज्य जिनवर पद, पूजन हेत हिये उमगा
थापों मनवचतन शुचि करिकै, जिनकी पाटलदेव्या म
महिष चिह्न पद लसै मनोहर, लाल वरन तन सम
सो करुणानिधि कृपादृष्टिकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ यहं आ

ॐ ह्री श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, सवौषट्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। अत्र मम सन्निहितो भव भव, वषट्।

अष्टक

छन्द जोगीरासा। आचलीबंध "जिनपद पूजो लव ई।"

गंगाजल भरि कनककुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई,
करम कलंक विनाशनकारन, धार देत हरषाई।
वासपूज वसुपूज तनुजपद, वासव सेवत आई,
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।। जिन०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

कृष्णागरु मलयागिरचंदन, केशरसंग घसाई।
भवआताप विनाशनकारन, पूजों पदचित लाई।।वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चदनम्।

देवजीर सुखदास शुद्ध वर, सुवरन थार भराई।
पुंज धरत तुम चरनन आगैं, तुरित अखय पद पाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

पारिजात संतानकल्पतरु-जनित सुमन बहु लाई।
मीनकेतु मदभंजनकारन, तुम पदमद्म चढ़ाई।। वासु०॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्पम्।

नव्यगव्यआदिक रसपूरित, नेवज तुरति उपाई।
क्षुधारोग निवारनकारन, तुम्हें जजों शिर नाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

दीपकजोत उदोत होत वर, दशदिश में छवि छाई।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम्।

दशविध गंध मनोहर लेकर, दातहोत्र मे डाई।
अष्टकरम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सुधूम उड़ाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

सुरस सुपक्क सुपावन फल लै, कंचनथार भराई।
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु भेंट धरों गुनगाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठो अग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति ! निकट धरो यह लाई।। वासु०।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम्।

पंचकल्याणक

छन्द पाईता (मात्रा 14)

कलि छट्ट असाढ सुहायो, गरभागम मंगल पायो।
दशमें दिवितें इत आये, शतइन्द्र जजे सिर नाये।।

ॐ ह्रीं आषाढकृष्णषष्ठ्या गर्भमगलमडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घम्।

कलि चौदश फागुन जानों, जनमे जगदीश महानों।
हरि मेर जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्या जन्ममगलमंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घम्।

तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियां तप श्री अभिरामा।
नृप सुन्दर के पय पायो, हम पूजत अतिसुख पायो।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्या तपोमगलमंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घम्।

वदि भादव दोइज सोहै, लहि केवल आतम जो है।
अनअन्त गुनाकर स्वामी, निज वंदो त्रिभुवन नामी।।

ॐ ह्रीं भाद्रपद कृष्णाद्वितीयाया ज्ञानमगलमंडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घम्।

सितभादव चौदशि लीनों, निरवाण सुथान प्रवीनों।
पुर चंपाथानक सेती, हम पूजत निजहित हेती।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्ल चतुर्दश्या मोक्षमगलमडिताय श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घम्।

जयमाला

दोहा

चंपापुर में पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनों, जय जय जय जिनराय।। 1।।

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनन्त सुखामृतमुक्त महान।
महाबलमंडित खंडित काम, रमाशिवसंग सदा विसराम।। 2।।
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजैं नित पादरविंद।
प्रभू तुव अन्तर भाव विराग, सुबालहि तें व्रतशीलसों राग।। 3।।
कियो नहिं राज उदाससरूप, सुभावन भावत आतमरूप।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्यसुखाश्रित वस्त।। 4।।
अशर्न नहीं कोउ शर्नसहाय, जहां जिय भोगत कर्मविपाय।
निजातम कै परमेसुर शर्न, नहीं इनके बिन आपद हर्न।। 5।।
जगत्त जथा जलबुद्बुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव।
अनेकप्रकार धरी यह देह, भमें भव कानन आन न नेह।। 6।।
अपावन सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्धसुभाव धरीय।
धरै इनसों जब नेह तबेव, सुआस्रव कर्मतबै वसुभेव।। 7।।
जबै तनभोगजगत्त उदास, धरैं तब संवर निर्जर आस।
करै जब कर्मकलंक विनाश, लहै तब मोक्ष महासुखराश।। 8।।
तथा यह लोक नराकृत नित, विलोकियते षटद्रव्य विचित्त।
सु आतमजानन बोधविहीन, धरै किम तत्त्व प्रतीत प्रवीन।। 9।।
जिनागमज्ञानरू संजमभाव, सबै निज ज्ञान बिना विरसाव।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिस शिव हाल।। 10।।
लयो सब जोग सुपुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहिगंवाय।
विचारत यों लवकान्तिक आय, नमें पदपंकज पुष्प चढ़ाय।। 11।।
कह्यो प्रभु धन्य किया सुविचार, प्रबोधि सु येम कियो जु विहार।
तबै सौधर्म तनों हरि आय, रच्यौ शिविका चढ़ि आप जिनाय।। 12।।
धरे तप, पाय सुकेवलबोध, दियो उपदेश सुभव्य संबोध।
लियो फिर मोक्ष महासुख राश, नमैं नित भक्त सोई सुखआश।। 13।।

छन्द धत्तानन्द

नित वासववन्दत, पापनिकंदत, वासपूज्य व्रत ब्रह्मपति।
भवसंकलखंडित आनन्दमण्डित, जै जै जै जैवन्त जती।।14।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घम्।

सोरठा

वासपूज पद सार, जजों दरबविधि भावसों।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम।। 15।।

परिपुष्पांजलिम् क्षिपेत् इत्याशीर्वाद ।

श्री अनंतनाथ जिन पूजा

छन्द कवित्त

पुष्पोत्तर तजि नगर अयुध्या जनम लियो सूर्याउर आय,
सिंधसेन नृपके तुम नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय।
गुन अनंत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय,
थापतु हों त्रय बार उचरिकै, कृपासिन्धु तिष्ठ तु इत आय।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, सवौषट्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छन्द गीता तथा हरिगीता

शुचि नीर निरमल गंगको लै, कनकभृंग भराइया,
मल करम धोवन हेत मन, वचकाय धार ढराइया।
जगपूज परमपुनीत मीत, अनंत संत सुहावनों,
शिव कंत वंत महंत ध्यावौं, भ्रंत तंत नशावनों।। 1।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृतयुविनाशनाय जलम्।

हरिचन्द कदलीनंद कुंकुम, दंतताप निकंद है।
सब पापरुजसंतापभंजन, आपको लखि चंद है।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चदनम्।

कनशाल दुति उजियाल हीर, हिमालगुलकनितें घनी।
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वच्छ सुहावनी।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं अनंतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

पुष्कर अमरतर जनित वर, अथवा अवर कर लाइया।
तुम चरनपुष्करतर धरत, सशूल सकल नशाइया।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्पम्।

पकवान नैना घ्रानरसना-को प्रमोद सुदाय हैं।
सो ल्याय चरन चढ़ाय रोग, क्षुधाय नाश कराय हैं।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

तममोह भानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अबै।
वर दीप धारों वारि तुम ढ़िग, स्वपर ज्ञान जु द्यो सबै।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम्।

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्रध्वज में खेय हों।
वसुकर्म भर्म जराय तुम ढ़िग, निज सुधातम वेय हों।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

रसथक्व पक्व सुभक्व चक्व, सुहावनें मृदु पावनें।
फलसार वृन्द अनंद ऐसो, ल्याय पूज रचावनें।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरों।
अरु धूप जुत मैं अरघ करि, करजोरजुग विनति करों।। जगपूज०।।

ॐ ह्रीं श्री अनतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घम्।

पंचकल्याणक

छन्द सुन्दरी तथा द्रुतविलंबित

असित कातिक एकम भावनो, गरभको दिन सो गिन पावनों।
कियसची तित चर्चन चावसों, हम जजें इत आनंदभावसों।। 1।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्ण प्रतिपदि गर्भमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

जन्म जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोकविषैं लशी।
हरि जजे गिरिराज समाजतैं, हम जजैं इत आतम काजतैं।। 2।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्या जन्ममंगलमंडिताय श्री अनतनाथ-जिनेन्द्राय अर्घम्।

भवशरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो।
सकल इंद्र जजे तित आइकैं, हम जजैं इत मंगल गाइकैं।। 3।।

ॐ ह्रीं जयेष्ठकृष्णाद्वादश्या तपोमंगलमंडिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घम्।

असित चैत अमावसको सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही।
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो।। 4।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्या ज्ञानमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय अर्घम्।

असित चैत तुरी तिथि गाइयौ, अघतघाति हने शिव पाइयौ।
गिरि समेद जजे हरि आयकै, हम जजैं पद प्रीति लगाइकैं।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्राय अर्घम्।

जयमाला

छन्द दोहा

तुम गुण बरनन येम जिम, खंविहाय करमान।
तथा मेदिनी पदनिकरि, कीनो चहत प्रमान।। 1।।
जय अनन्त रवि भव्यमन, जलज वृन्द बिहसाय।
सुमति कोकतियथोक सुख, वृद्धि कियो जिनराय।। 2।।

जै अननत गुनवत नमस्ते, शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते।
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते।। 3।।
रत्नत्रयधर धीर नमस्ते, करमशत्रुकरिकीर नमस्ते।
चार अनत महन्त नमस्ते, जय जय शिवतियकत नमस्ते।। 4।।
पंचाचार विचार नमस्ते, पंच कर्ण मदहार नमस्ते।
पच पराव्रत-चूर नमस्ते, पंचमगति सुखपूर नमस्ते।। 5।।
पचलब्धि-धरनेश नमस्ते, पच-भाव-सिद्धेश नमस्ते।
छहो दरब गुनजान नमस्ते, छहो कालपहिचान नमस्ते।। 6।।
छहो काय रच्छेश नमस्ते, छह सम्यक उपदेश नमस्ते।
सप्तविशनबनवन्हि नमस्ते, जय केवलअपरन्हि नमस्ते।। 7।।
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते, सप्त शुभ्रगतिहनन नमस्ते।
सप्तभगके ईश नमस्ते, सातो नय कथनीश नमस्ते।। 8।।
अष्टकरममलदल्ल नमस्ते, अष्टजोगनिरशल्ल नमस्ते।
अष्टमधराधिराज नमस्ते, अष्टगुननिसिरताज नमस्ते।। 9।।
जय नवकेवल प्राप्त-नमस्ते, नवपदार्थथिति आप्त नमस्ते।
दशों धरमधरतार नमस्ते, दशों बंधपरिहार नमस्ते।। 10।।
विघ्न महीधर बिज्जु नमस्ते, जय उरधगति रिज्जु नमस्ते।
तनकनकदुति पूर नमस्ते, इख्वाकज गनसूर नमस्ते।। 11।।
धनु पचासतन उच्च नमस्ते, कृपासिधु गुन शुच्च नमस्ते।
सेही अक निशक नमस्ते, चितचकोरमृगअङ्‌क नमस्ते।। 12।।
राग दोषमदटार नमस्ते, निजविचार दुखहार नमस्ते।
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते, 'वृन्द' करो सुखकंद नमस्ते।। 13।।

छन्द घत्तानन्द

जय जय जिनदेवं सुरकृतसेवं; नितकृतचित्तहुल्लासधरं।
आपदउद्धारं समतागारं, वीतराग विज्ञानभरं।।14।।

ॐ ह्रीं श्रीअनतनाथ जिनेन्द्राय महार्घम्।

जो जन मनवचकाय लाय, जिन जजै नेह धर,
वा अनुमोदन करै करावै पढ़ै पाठ वर।
ताके नित नव होय, सुमंगल आनन्ददाई,
अनुक्रमतै निरवान, लहै सामग्री पाई।। 15।।

परिपुष्पाजलिम् क्षिपेत्, इत्याशीर्वाद.

श्री शान्तिनाथ जिन पूजा

या भव कानन मे चतुरानन, पाप पनानन घेरि हमेरी।
आतम जान न मान न ठान, न बान न होन दई सठ मेरी।।
ता-मद-भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी।
आन गही शरनागतको, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी।।

ॐ ह्रीं श्रीशातिनाथ जिनेद्र! अत्रावतरावतर सवोषट्।
ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।
ॐ ह्रीं श्री शातिनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

छन्द त्रिभगी

हिमगिरिगतगगा, धार अभगा, प्रासुक सगा, भरि भृगां।
जरमरनमृतगा, नाशि अधगा, पूजि पदगां मृदुहिंगा।।
श्रीशान्ति जिनेश, नुतशक्रेश, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्री शातिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर बावन चन्दन, कदली नन्दन, घन आनन्द, सहित घसो।
भव ताप निकन्दन, ऐरा नन्दन, वन्दि अमंदन, चरन वसों।।श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशतिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत, भरि थारी
दुख दारिद गज्जत, सद पद सज्जत, भवभय भज्जत, अतिभारी।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मन्दार सरोज, कदली जोजं, पुञ्ज भरोजं मलयभरं।
भरि कंचन थारी, तुम ढिग धारी, मदन विदारी, धीरधर।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नवीने, पावन कीने, षट रस भीने, ...
... मोदन हारे, छुधा विदारे, आगै ... ।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य ... ।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रम तम नाशे, ज्ञेयवि... ।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा, ... ज भासे।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाश... ... पामीति स्वाहा।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माहि जुरं।
तसु धूम उड़ावै नाचत आवै, अलि गुंजावे, मधुर सुरं।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं निंबुक भूरं लै आयो।
तासो पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निज-रसरज्जों, उमगायो।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्री... ...नाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फल निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिगं धारी, आनन्दकारी, दृग-प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुना-धारी, यातैं थारी, शरनारी।। श्री०।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपापमीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

असिन सातय भादव जानिये। गरभ-मगंलता दिन मानिये।
सचि कियो जननी पद चर्चनं। हम करैं इत ये पद अर्चनं।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्या गर्भमगलमण्डिताय श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

जनम जेठ चर्तुदशि श्याम है, सकलइन्द्र सु आगत धाम है।
गजपुरै गजसाजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हों अबैं।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्या जन्ममगलप्राप्ताय श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदश जेठ सुहावनी, धरम-हेत जजों गुन-पावनी।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्या तपमगलमण्डिताय श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

शुकल पौष दशैं सुख-राश है, परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है।
भव-समुद्र-उधारन देवकी, हम करैं नित मगंल सेवकी।।

ॐ ह्रीं पौषशुक... ...म्या केवलज्ञानप्राप्ताय श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

अमित-चौदश जेठ हने अरी, गिरि समेदथकी शिव-तीयवरी।
सकल-इन्द्र जजैं तित आइकैं हम जजैं इत मस्तक नाइकैं।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमगलमण्डिताय श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घम्।

जयमाला

छन्द रथोद्धता, चन्द्रवर्त्म वर्ण 11-लाटानुप्रास

शान्ति शान्तिगुनमंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपण्डिते सदा।
मैं तिन्हें भक्ति-मण्डिते सदा, पूजि हों, कलुश हण्डिते सदा।।
मोक्ष-हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुनरत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरों, ध्यावतें तुरत मुक्तितिय वरों।।

छन्द पद्धरी

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भव-सागर में अद्भुत जहाज।
तुम तजि सरवारथसिद्ध थान, सरवारथ-जुत गजपुर महान।।
तित जनम लियौ आनन्द धार, हरि ततछिन आयो राज द्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको करमे लै हरष मान।।
हरि गोद देय सो मोद धार, सिर चमर अमर ढोरत अपार।
गिरिराज जाय तित शिला पाण्ड, तापै थाप्यौं अभिषेक माण्ड।।
तित पंचम उदधितनों सु वार, सुरकर कर करि ल्याये उदार।
तब इन्द्र सहस-कर करि अनन्द, तुम सिर-धारा ढारी सुनन्द।।
अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर, भभ भभ भभ घघ घघ कलश शोर।
दृम दृम दृम दृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग।।
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घण्टा करत ध्वान।
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल।।
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत तहां आनन्द संग।।
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहां सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितु-सदन आय, हरि सौंपयौ तुम तित वृद्ध थाय।।
पुनि राजमाहिं लहि चक्र-रत्न, भोग्यो छ खण्ड करि धरम जत्न।
पुनि तप धरि केवल ऋद्धि पाय, भवि जीवन कों शिवमग बताय।
शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश, गुणमण्डित अतुल अनन्त भेष।

मै ध्यावतु हों नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय।।
सेवक अपनो निज जान जान, करुणा करि भौभय भान भान।
यह विधन-मूल तरू खण्ड-खण्ड, चित चिंतित आनन्द मण्ड मण्ड।।

छन्द— श्रीशान्ति महन्ता, शिवतिय कन्ता, सुगुन अनन्ता, भगवंता।
भव भ्रमन हनन्ता, सौख्यअनंता, दातारं तारन-वन्ता।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द रूपक सवैया

शान्तिनाथ-जिनके पद-पंकज, जो भवि पूजैं मन-वच-काय।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय।।
मनवांछित सुख पावै जो नर, ध्यावे भगति-भाव अति लाय।
तातैं, 'वृन्दावन' नित बन्दे, जातै शिवपुर राज कराय।।

(इत्याशीर्वाद। परिपुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

श्रीपार्श्वनाथ जिनपूजा

'पुष्पेन्दु'

स्थापना

हे पार्श्वनाथ! हे विश्वसैन सुत, करुणा सागर तीर्थकर।
हे सिद्धशिला के अधिनायक, हे ज्ञान उजागर तीर्थकर।।
हमने भावुकता में भरकर, तुमको हे नाथ पुकारा है
प्रभुवर! गाथा की गगा से, तुमने कितनो को तारा है।।
हम द्वार तुम्हारे आये है, करूणा कर नेक निहारो तो।।
मेरे उर के सिहासन पर, पग धारो नाथ पधारो तो।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर सवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन।।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

मैं लाया निर्मल जल धारा, मेरा अन्तर निर्मल कर दो,
मेरे अन्तर को हे भगवन, शुचि सरल भावना से भर दो।
मेरे इस आकुल अन्तर को दो शीतल सुखमय शान्ति प्रभो,
अपनी पावन अनुकम्पा से हर लो मेरी भव-भ्रान्ति प्रभो।। 1।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म, जरा, मृत्यु विनाशनाय जल नि०।

प्रभु पास तुम्हारे आया हूं, भव का सन्ताप सताया हूं,
तव पद चन्दन के हेतु प्रभो, मलयागिरि चन्दन लाया हूं।
अपने पुनीत चरणाम्बुज की हमको कुछ रेणु प्रदान करो,
हे सकट मोचन तीर्थकर, मेरे मन के सन्ताप हरो।।2।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय ससार ताप विनाशनाय चन्दन नि०।

प्रभुवर क्षणभंगुर वैभव को, तुमने क्षण मे ठुकराया है
निज तेज-तपस्या से तुमने, अभिनव अक्षय पद पाया है
अक्षय हों मेरे भक्ति भाव, प्रभुपद की अक्षय प्रीति मिले
अक्षय प्रतीति रवि किरणों से प्रभु मेरा मानस कुंज खिले।।3।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान नि० स्वाहा।

यद्यपि शतदल की सुषमा से मानस-सर शोभा पाता है,
पर उसके रस मे फस मधुकर अपने प्रिय प्राण गंवाता है।
हे नाथ आपके पद-पंकज भव सागर पार लगाते हैं,
इस हेतु तुम्हारे चरणो में श्रद्धा के सुमन चढ़ाते हैं।।4।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि०।

व्यजन के विविध समूह प्रभो तन की कुछ क्षुधा मिटाते हैं,
चेतन की क्षुधा मिटाने मे प्रभु! ये असफल रह जाते हैं।
इनके आस्वादन से प्रभु मैं सन्तुष्ट नहीं हो पाया हूं,
इस हेतु आपके चरणों मे नैवेद्य चढ़ाने आया हूं।।5।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि०।

प्रभु दीपक की मालाओ से, जग अन्धकार मिट जाता है,
अन्तर्मन का अन्धकार, इनसे न दूर हो पाता है।
यह दीप सजाकर लाए हैं, इनमें प्रभु दिव्य प्रकाश भरो,
मेरे मानस-पट पर छाए, अज्ञान तिमिर का नाश करो।।6।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि०।

यह धूप सुगन्धित द्रव्यमयी, नभमण्डल को महकाती है,
पर जीवन-अघ की ज्वाला में, ईंधन बनकर जल जाती है।
प्रभुवर इसमें वह तेज भरो, जो अघ को ईंधन कर डाले,
हे वीर विजेता कर्मों के, हे मुक्ति-रमा वरने वाले।।7।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूप नि०।

यों तो ऋतुपति ऋतु में ही, फल से उपवन को भर जाता है,
पर अल्प अवधि का ही झोंका, उनको निष्फल कर जाता है।
दो सरस भक्ति का फल प्रभुवर, जीवन-तरु तभी सफल होगा।
सहजानन्द सुख से भरा हुआ, इस जीवन का प्रतिफल होगा।। 8।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि०।

पथ की प्रत्येक विषमता को मैं समता से स्वीकार करूं,
जीवन-विकास के प्रिय-पथ की, बाधाओं का परिहार करूं।
मैं अष्ट कर्म आवरणों का, प्रभुवर आतंक हटाने को,
वसु द्रव्य संजोकर लाया हूं, चरणों में नाथ चढ़ाने को।। 9।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ नि०।

पंच कल्याणक

शिवदेवी के गर्भ में आये दीनानाथ।
चिर अनाथ जगती हुई, सजग, समोद, सनाथ।।
अज्ञानमय इस लोक में, आलोक सा छाने लगा,
होकर मुदित सुरपति नगर में, रत्न बरसाने लगा।
गर्भस्थ बालक की प्रभा प्रतिभा, प्रकट होने लगी,
नभ से निशा की कालिमा, अभिनव उषा धोने लगी।। 1।।

ॐ ह्रीं श्री बैसाख कृष्णा द्वितीया गर्भ मगल मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

द्वार द्वार पर सज उठे, तोरण वन्दनवार।
काशी नगरी में हुआ, पार्श्व प्रभु अवतार।।
प्राची दिशा के अंग में नूतन दिवाकर आ गया,
भविजन जलज विकसित हुए जग में उजाला छा गया।
भगवान के अभिषेक को जल क्षीर सागर ने दिया,
इन्द्रादि ने है मेरु पर अभिषेक जिनवर का किया।। 2।।

ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्या जन्म मगल प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

निरख अथिर ससार को, गृह कुटुम्ब सब त्याग।
वन मे जा दीक्षा धरी, धारण किया विराग।।
निज आत्मसुख के श्रोत मे, तन्मय प्रभु रहने लगे,

उपसर्ग और परीषहों को, शान्ति से सहने लगे।
प्रभु की विहार वनस्थली, तप से पुनीता हो गई,
कपटी कमठ शठ की कुटिलता, भी विनीता हो गई।।3।।

ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्या तपो मंगल मंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

आत्मज्योति से हट गये, तम के पटल महान।
प्रकट प्रभाकर सा हुआ, निर्मल केवल ज्ञान।।
देवेन्द्र द्वारा विश्वहित, समअनुसरण निर्मित हुआ,
समभाव से सबको शरण का, पंथ निर्देशित हुआ।
था शान्ति का वातावरण, उनमें न विकृत विकल्प थे,
मानों सभी तब आत्महित के, हेतु कृत-संकल्प थे।।4।।

ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण चतुर्थी दिने केवल ज्ञान प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

युग युग के भव भ्रमण से, देकर जग को त्राण।
तीर्थंकर श्री पार्श्व ने, पाया पद-निर्वाण।।
निर्लिप्त आज नितान्त है, चैतन्य कर्म अभाव से,
है ध्यान, ध्याता, ध्येय का, किंचित न भेद स्वभाव से।
तव पाद पद्मो की प्रभु, सेवा सतत पाते रहें,
अक्षय असीमानन्द का, अनुराग अपनाते रहें।।5।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

वन्दनागीत

अनादिकाल से, कर्मो का मैं सताया हूं,
इसी से आपके, दरबार आज आया हूं।
न अपनी भक्ति, न गुणगान का भरोसा है,
दया निधान, श्री भगवान का भरोसा है।
इक आस लेकर आया हूं, कर्म कटाने के लिये
भेंट मैं कुछ भी नहीं, लाया चढ़ाने के लिये।।1।।
जल न चन्दन और अक्षत, पुष्प भी लाया नहीं है
नहीं नैवेद्य, दीप, मैं धूप फल लाया नहीं।

हृदय के टूटे हुए, उद्गार केवल साथ हैं,
और कोई भेंट के हित, अर्घ सजवाया नहीं।
है यही फल फूल जो, समझो चढ़ाने के लिये।
भेंट मैं कुछ भी नहीं, लाया चढ़ाने के लिये।।2।।
मांगना यद्यपि बुरा, समझा किया मैं उम्र भर,
किन्तु अब जब मांगने पर, बांध कर आया कमर।
ओर फिर सौभाग्य से, जब आप सा दानी मिला,
तो भला फिर मांगने में, आज क्यों रक्खूं कसर।
प्रार्थना है, आप ही जैसा बनाने के लिये
भेंट मैं कुछ भी नहीं लाया, चढ़ाने के लिये।।3।।
यदि नहीं यह दान देना, आपको मन्जूर है।
और फिर कुछ मांगने से, दास ये मजबूर है।
किन्तु मुंह मांगा मिलेगा, मुझको ये विश्वास है,
क्योंकि लौटाना, न इस दरबार का दस्तूर है।
प्रार्थना है, कर्म बन्धन से छुड़ाने के लिए।
भेंट मैं कुछ भी नहीं, लाया चढ़ाने के लिये।।4।।
हो न जब तक मांग पूरी, नित्य सेवक आयेगा,
आपके पदकंज मे, 'पुष्पेन्दु' शीश झुकायेगा।
है प्रयोजन आपको, यद्यपि न भक्ति से मेरी,
किन्तु फिर भी नाथ, मेरा तो भला हो जायेगा।
आपका क्या जायेगा, बिगड़ी बनाने के लिये।
भेंट मैं कुछ भी नहीं, लाया चढ़ाने के लिये।।5।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीवर्द्धमान जिन पूजा

श्रीमत वीर हरें भवपीर भरैं सुखसीर अनाकुलताई,
केहरि-अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकति मौलि सुआयी।
मै तुमको इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरषाई,
हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ· ठ।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

छन्द अष्टपदी

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन-भृगड भरों,
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मतिनायक हो,
जय वर्द्धमान गुण धीर सन्मतिदायक हो।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जनमजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

मलयागिर चन्दनसार, केसर-संग घसों।
प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसों।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनम्।

तन्दुल सित शशि सम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अवरूिद्ध, पावों शिव नगरी।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान्।

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ-भंजन हेत, पूजौ पद थारे।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम्।

रस रञ्जल सञ्जत सद्य, मञ्जत थार भरी।
पद जञ्जत रञ्जत अद्य, भञ्जत भूख-अरी।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

तम खण्डित मण्डित नेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर है सुखगेह, भ्रम-तम खोवत हों।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

ऋतु-फल कल-वर्जित लाय, कंचन थार भरा।
शिवफलहित हे जिनराय तुम ढिंग भेंट धरा।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

जलफल वसु सजि हिम-थार, तनमनमोद धरों।
गुण गांऊ भवदधितार, पूजत पाप हरों।। श्री वीर०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम्।

पंचकल्याणक

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो सरना
गरभ साढ़ सित छट्ठ लियो थिति, त्रिशला उर अघ-हरना
सुर सुरपति तितसेव करौ नित, मै पूजौं भवतरना।। मोहि०।।

ॐ ह्रीं अषाढ़शुक्लषष्ट्या गर्भ मगलमडिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घम्।

जन्म चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन-वरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजौं भव हरना।। मोहि०।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप-कुमार घर पारन कीनों, मैं पूजौं तुम चरना।। मोहि०।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्या तपोमगलमंडितायश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

शुक्ल दशैं वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना।
केवललहि भवि-भव सर तारे, जजौं चरन सुख भरना।। मोहि०।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्या ज्ञानकलयाणकप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

कार्तिक श्याम अमावस शिवतय, पावापुरतें वरना।
गनिफनिवृन्द जजैं तित बहुविधि, मैं पूजौं भवहरना।। मोहि०।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामवस्या मोक्षमगलमंडिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

जयमाला

गनधर असनिधर, चक्रधर, हलधर, गदाधर, वरवदा
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुख-हरन आनन्द-भरन तारन, तरन चरन रसाल हैं,
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं।
जय त्रिसालनन्दन, हरिकृतवन्दन, जगदानन्दन चन्दवरं।
भवतापनिकन्दन, तनमनमन्दन, रहित सपन्दन नयन-धरं।।
जय केवल भानुकलासदनं, भवि-कोकविकाशन कंद वनं।
जगजीत महारिपु मोहहरं, रज ज्ञानदृगावरचूर करं।।
गर्भादिक मंगल मंडित हो, दुखदारिद को नितखण्डित हो।
जगमाहिं तुम्हीं सतपण्डित हो, तुमही भवभाव विहण्डित हो।।
हरिवंश-सरोजन को रवि हो, बलवन्तमहन्त तुम्ही कवि हो।
लहि केवल धर्म प्रकाश कियौ, अबलों सोई मारग राजति यौ।
पुनि आपतने गुनिमाहिं सहीं, सुरमग्न रहै जितने सबही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लयमाननिसों मनभावत हैं।
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुम भक्ति विषै पग येम धरी।
झनंन झननं झनंन झनंन, सुरलेत तहां तनन तननं।।
घननं घननं घनघण्ट बजै, दृमंद दृमंद मिरदंग सजै।
गगनांगन गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता।।
धृगतां धृगतां गति बाजत हैं, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभ में, इकरूप अनेक जुधारि भमें।।
कई नारि सुबीन बजावति हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावति हैं।
कर तालविषै करताल धरें, सुरताल विशाल जु नाद करे।।
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुरभक्ति करें प्रभुजी तुमरी।
तुमही जग जीवन के पितु हो, तुमही विनकारनतें हितु हो।।
तुमही सब विघ्न विनाशन हो, तुमही निज आनन्दभासन हो।
तुमही चित चिन्तितदायक हो, जगमाहि तुम्ही सब लायकहो।।
तुमरे पन मंगलमाहि सही,जिय उत्तमपुण्य लियो सबही।
हमको तुमरी सरनागत हैं, तुमरे गुन मे मन पागत है।।
प्रभू मोहिय आप सदा बसिये, जब लों वसुकर्म नहीं नसिये।
तबलों तुम ध्यान हिये बरतों, तबलों श्रुतचिंत न चित्तरतो।।

तबलो व्रत चारित चाहतु हों, तब लों शुभभाव सुगाहतु हों।
तबलो सतसंगति नित्त रहों, तब लों मम संजम चित्त गहो।।।
जब लों नहिं नाश करो अरि को शिवनारि वरों समता धरिकों।
यह द्यो तब लौं हमको जिनजी, हम जाचतु है इतनी सुन जी।।
श्री वीर जिनेशा नमित-सुरेशा, नाग-नरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघ्न नशावै, वांछित पावै शर्म-वरा।।

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय महाअर्घ

श्री सनमति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीति।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति नवनीत।।
(इत्याशीर्वाद। परिपुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

श्री महावीर जिन पूजा

(हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थङ्कर स्वयं महावीर हैं।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन! अत्र तिष्ठ ठ ठः।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जिनके गुणों का स्तवन, पावन करन अम्लान है।
मल हरन निर्मल करन, भागीरथी नीर समान है।।
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि, चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो, रिपु विघन कितने ही करें।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन, अक्षत समान अखंड हैं।
है शान्त यद्यपि तदपि जो, दिनकर समान प्रचण्ड हैं।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर, सुभट मारन सूर हैं।
परगन्ध से विरहित तदपि, निजगन्ध से भरपूर हैं।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन, मिष्ट इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन, क्यों तुम्हे उनसे प्रीति हों?।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

युगपद् विशद् संकलार्थ झलकें, नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्यदीपक वीर जिन, दीपक चढ़ाऊं क्या तुम्हें? ।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईधंन दहन, पावन पुंज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण, ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान हैं।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत फल भोगता, निज पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर, सफल जीवन आपका।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ का क्या मूल्य है, अनअर्घ पद्र के सामने।
उस परम-पद् को पा लिया, हे पतितपावन आपने।। संतप्त०।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ

सित छटवीं आसाढ़, मां त्रिशला के गर्भ में।
अंतिम गर्भावास, यही जान प्रणमूं प्रभो।।

ॐ ह्रीं आषाढ़ शुक्लाषष्ट्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जनम लियो प्रभू।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्या जन्ममंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

दशवीं मंगसिर कृष्ण वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने।।

ॐ ह्रीं मार्ग शीर्ष कृष्णादशम्या तपमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

सित दसवीं बैशाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्य मय अर्घ प्रभुपद पूजा करें हम।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लादशम्या ज्ञानमगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

कार्तिक अमावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाये हम।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णाअमावस्या मोक्षमगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

जयमाला

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे, असि तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।

हे मोह-महादल-दलन वीर दुद्धरतप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद।।
अघटरन करन-मन हरन हार, सुखकरन हरन भवदुख अपार।
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव।।
मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश तुम राग द्वेष जीते अशेष।
शुभ अशुभराग की आग-त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग।।
षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।
सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचाने विशेष।।
वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करै मोह-रिपु का अभाव।
वे प्रकट करें निज-पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक।।
निज आतम में ही रहे लीन, चारित्रमोह को करें क्षीण।
उनका हो जावे क्षीण राग, वे भी हो जावें वीतराग।।
जो हुए आज तक अरिहंत, सबने अपनाया यही पंथ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार।।
जो तुमको नहिं जाने जिनेश, वे पावें भव-भव भ्रमण क्लेश।
वे माँगें तुम से धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज।।
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन।।
प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचानें पावें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार।।
तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हो जावे परमात्मरूप।।
उनको ना कोई रहें चाह, वे अपनालेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होय सिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान।।

(इत्याशीर्वाद: परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सलूना पर्व पूजा

श्रीअकम्पनाचार्यादि सप्त-शत-मुनि-पूजा

(चाल जोगीरासा)

पूज्य अकम्पन साधु-शिरोमणि, सात-शतक मुनि ज्ञानी।
आ हस्तिनापुर के कानन में, हुए अचल दृढ़ ध्यानी।।
दुखद सहा उपसर्ग भयानक, सुन मानव घबराये।
आत्म-साधना के साधक वे, तनिक नहीं अकुलाये।।
योगिराज श्री विष्णु त्याग तप, वत्सलता-वश आये।
किया दूर उपसर्ग, जगत-जन मुग्ध हुए हर्षाये।।
सावन शुक्ला पन्द्रस पावन, शुभ दिन था सुख दाता।
पर्व सलूना हुआ पुन्य-प्रद, यह गौरवमय गाथा।।
शान्ति दया समताका जिनसे, नव आदर्श मिला है।
जिनका नाम लिये से होती, जागृत पुण्य-कला है।।
करूं वन्दना उन गुरुपद की, वे गुण मैं भी पांऊ।
आह्वानन संस्थापन सन्निधिकरण करूं हर्षाऊं।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिसमूह अत्र अवतर अवतर सवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः प्रतिष्ठापनम् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकम्

(गीता छन्द)

मैं उर-सरोवर से विमल जल भाव का लेकर अहो।
नत पाद-पद्मों में चढ़ाऊं मृत्यु जनम जरा न हो।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर, मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जल निर्व० स्वाहा।। 1।।

सन्तोष मलयागिरिय चन्दन, निराकुलता सरस ले।
नत पादपद्मों में चढांऊं विश्वताप सभी जले।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्य संसारतापविनाशनाय चदनम् निर्व० स्वाहा।। 2।।

तंदुल अखंडित शुद्ध आशा के नवीन सुहावने।
नत पाद पद्मों में चढ़ाऊं दीनता क्षयता हने।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योअक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।।3।।

ले विविध विमल विचार सुन्दर सरस सुमन मनोहरे।
नत पाद-पद्मोंमें चढ़ाऊं काम की बाधा हरे।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्य· कामबाणविध्वसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।।4।।

शुभ भक्ति घृत में विनय के, पकवान पावन मैं बना।
नत पाद-पद्मो मे चढ़ा, मेटूं क्षुधा की यातना।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर, मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करू पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दे।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्य क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्व० स्वाहा।।5।।

उत्तम कपूर विवेक का ले आत्म-दीपक में जला।
कर आरती गुरु की हटाउं मोह-तमकी यह बला।।
श्रीगुरू अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटे, वे सुखद समता भक्ति दे।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादिसप्तशत-मुनिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्व० स्वाहा।।6।।

ले त्याग-तपकी यह सुगन्धित धूप मैं खेंऊं अहो।
गुरुचरण-करुणा से करमका कष्ट यह मुझको न हो।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओ ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योऽष्टकर्मविध्वसनाय धूपं निर्व० स्वाहा।।7।।

शुचि-साधना के मधुरतम प्रिय सरस फल लेकर यहां।
नत पाद-पद्मों में चढ़ाऊं, मुक्ति मैं पाऊं यहां।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर, मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो मोक्षफलप्राप्तयेफल निर्वपामीति स्वाहा ।8।

यह आट द्रव्य अनूप श्रद्धा स्नेह से पुलकित हृदय।
नत पाद-पदमों में चढ़ाऊं भव-पार मैं होऊं अभय।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करू पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दे।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।9।

जयमाला

सोरठा

पूज्य अकम्पन आदि, सात शतक साधक सुधी।
यह उनकी जयमाल, वे मुझको निज भक्ति दें।।

पद्धड़ी छन्द

वे जीव दया पालें, महान, वे पूर्ण अंहिसंक ज्ञानवान।
उनके न रोष, उनके न राग, वे करें साधना मोह त्याग।।
अप्रिय असत्य बोलें न वैन, मन वचन कायमें भेद है न।
वे महासत्य धारक ललाम, है उनके चरणों में प्रणाम।।
वे लें न कभी तृणजल, अदत्त, उनके न धनादिक में ममत्त।
वे व्रत अचौर्य दृढ़ धरें सार, है उनको सादर नमस्कार।।
वे करें विषय की नहीं चाह, उनके न हृदय में काम दाह।
वे शील सदा पालें महान।, सब मग्न रहें निज आत्मध्यान।।
सब छोड़ वसन भूषण निवास, माया ममता अरू स्नेह आस।
वे धरें दिगम्बर वेष शान्त, होते न कभी विचलित न भ्रांत।।
नित रहें साधना में सुलीन, वे सहैं परीषह नित नवीन।
वे करे तत्व पर नित विचार, है उनको सादर नमस्कार।।
पचेंद्रिय दमन करें महान, वे सतत बढ़ावे आत्म ज्ञान।
संसार देह सब भोग त्याग, वे शिव-पथ साधें सतत जाग।।

"कुमरेश" साधु वे हैं महान, उनसे पाये जग नित्य त्राण।
मैं करूं वंदना बार बार, वे करें भवार्णव मुझे पार।।
मुनिवर गुण-धारक, पर-उपकारक, भव दुखहारक, सुख-कारी।
वे करम नशायें, सुगुण दिलायें, मुक्ति मिलायें, भय-हारी।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो महाअर्घं निर्व०।

सोरठा

श्रद्धा भक्ति समेत, जो जन यह पूजा करे।
वह पाये निज ज्ञान, उसे न व्यापे जगत दुख।।

(इत्याशीर्वाद)

श्रीविष्णुकुमार महामुनि पूजा

(लावनी छन्द)

श्री योगी विष्णुकुमार बाल वैरागी। पाई वह पावन ऋद्धि विक्रिया जागी।।
सुन मुनियों पर उपसर्ग स्वयं अकुलाये। हस्तिनापुर वे वात्सल्य-भरे हिय आये।।
कर दिया दूर सब कष्ट साधना-बल से। पा गये शान्ति सब साधु अग्निके झुलसे।।
जन जन ने जय-जयकार किया मन भाया। मुनियों को दे आहार स्वयं भी पाया।।
हैं वे मेरे आदर्श सर्वदा स्वामी। मैं उनकी पूजा करूं बनूं अनुगामी।।
वे दें मुझमें यह शक्ति भक्ति प्रभु पाऊं। मैं कर आतम कल्याण मुक्त हो जाऊं।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुने अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: प्रतिष्ठापनम्।
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(चाल जोगीरासा)

श्रद्धा की वापी से निर्मल, भावभक्ति जल लाऊं।
जनम मरण मिट जायें मेरे इससे विनत चढाऊं।।
विष्णुकुमार मुनिश्वर वन्दूं यति-रक्षा हित आये।
यह वात्सल्य हृदय में मेरे अभिनव ज्योति जगाये।।

ओ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।1।

मलयागिरि धीरज से सुरभित समता चन्दन लाऊं।
भव-भवकी आताप न हो यह इससे विनत चढाऊं।। विष्णुकुमार०।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये ससारतापविनाशनाय चन्दनं नि०।2।

चन्द्रकिरण सम आशाओं के अक्षत सरस नवीने।
अक्षय पद मिल जाये मुझको गुरु सन्मुख धर दीने।। विष्णुकुमार०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये अक्षयपदप्राप्तये अक्षत निर्व०।3।

उर उपवनसे चाह सुमन चुन विविध मनोहर लाऊं।
व्यथित करे नहिं काम वासना इससे विनत चढ़ाऊं।। विष्णुकुमार०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये कामबाणविनाशनाय पुष्प नि०।4।

नव नव व्रत के मधुर रसीले मैं पकवान बनाऊं।
क्षुधा न बाधा यह दे पाये इससे विनत चढ़ाऊं।। विष्णुकुमार०।।

ओ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि०।5।

मैं मन का मणिमय दीपक ले ज्ञान-वातिका जारू।
मोह-तिमिर मिट जाये मेरा गुरु सन्मुख उजियारूं।। विष्णुकुमार०।।

ओ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये मोहतिमिरविनाशनाय दीप नि०।6।

ले विराग की धूप सुगन्धित त्याग धूपायन खेऊं।
कर्म आठ का ठाठ जलाऊं गुरु के पद नित सेऊं।। विष्णुकुमार०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये अष्टकर्मदहनाय धूप निर्व०।7।

पूजा सेवा दान और स्वाध्याय विमल फल लाऊं।
मोक्ष विमल फल मिले इसी से विनत गुरू पद ध्याऊं। विष्णुकुमार०।।

ओ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये मोक्षफलप्राप्तये फल निर्व०।8।

यह उत्तम वसु द्रव्य संजोये हर्षित भक्ति बढाऊं।
मैं अनर्घपद को पाऊं गुरुपद पर बलि बलि जाऊं।। विष्णुकुमार०।।

ओ ह्री श्रीविष्णुकुमारमुनये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ निर्व०।9।

जयमाला

दोहा

श्रावण-शुक्ला पूर्णिमा यति रक्षा दिन जान।
रक्षक विष्णु मुनीश की यह गुणमाल महान।।

पद्धड़ी छन्द

जय योगिराज श्रीविष्णु धीर, आकर तुम हर दी साधु-पीर।
हतिनापुर वे आये तुरन्त, कर दिया विपतका शीघ्र अन्त।।
वे ऋद्धि सिद्धि-साधक महान्, वे दयावान वे ज्ञानवान।
धर लिया स्वयं वामन सरूप, चल दिये विप्र बनकर अनूप।।
पहुंचे बलि नृप के राजद्वार, वे तेज-पुञ्ज धर्मावतार।
आशीष दिया आनन्दरूप, हो गया मुदित सुन शब्द भूप।।
बोला वर मांगो विप्रराज, दूंगा मनवांछित द्रव्य आज।
पग तीन भूमि याची दयाल, बस इतना ही तुम दो नृपाल।।
नृप हंसा, समझ उनको अजान, बोला यह क्या, लो और दान।
इससे कुछ इच्छा, नहीं शेष, बोले वे, ये ही दो नरेश।।
संकल्प किया, दूँ भूमि दान, उसने मन में अति मोद मान।
प्रगटाई अपनी, ऋद्धि सिद्धि, हो गई, देह की विपुल वृद्धि।।
दो पग में नापा, जग समस्त, हो गया भूप, बलि अस्त-व्यस्त।
इक पग को, दो अब भूमिदान, बोले बलि से, करुणा-निधान।।
नत-मस्तक, बलि ने कहा अन्य, है भूमि न मुझ पर, हे अनन्य।
रख लें पग, मुझ पर एक नाथ, मेरी हो जाये, पूर्ण बात।।
कहकर तथास्तु, पग दिया आप, सह सका न बलि, वह भार-ताप
बोला तुरन्त ही, कर विलाप, करदें अब मुझको क्षमा आप।।
मैं हू दोषी, मैं हूं अजान, मैंने अपराध, किया महान्।
ये दुखित किये, सब साधु-सन्त, अब करो क्षमा, हे दयावन्त।।
तब की मुनिवर ने, दया-दृष्टि, हो उठी गगन से, महावृष्टि।
पा गये दग्ध, वे साधु-त्राण, जन-जन के पुलकित, हुए प्राण।।
घर घर में छाया, मोद-हास, उत्सव ने पाया नव प्रकाश।
पीड़ित मुनियों का, पूर्णमान, रख मधुर दिया, आहार दान।।
युग युग तक, इसकी रहे याद, कर सूत्र बंधाया, साहलाद।
बन गया पर्व, पावन महान, रक्षा बन्धन, सुन्दर निधान।।
वे विष्णु मुनीश्वर, परम सन्त, उनकी गुण-गरिमा, का न अन्त।
वे करें शक्ति, मुझको प्रदान, 'कुमरेश' प्राप्त हो आत्मज्ञान।।

घत्ता

श्री मुनि विज्ञानी आतम-ध्यानी, मुक्ति-निशानी सुख-दानी
भव-ताप विनाशे सुगुण प्रकाशे, उनकी करुणा कल्यानी।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये महार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

विष्णुकुमार मुनीश को, जो पूजे धर प्रीत।
वह पावे 'कुमरेश' शिव, और जगत में जीत
(इत्याशीर्वाद)

सप्तर्षि पूजा

प्रथम नाथ श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषिश्वर।
तीसर मुनि श्री निचय सर्व सुन्दर चौथो वर।।
पचम श्री जयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जय मित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि।।
ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूं तास पद थापना।
मैं पूजूं मन वचन काय करि, जो सुख चाहूं आपना।।

ॐ ह्रीं चारणार्द्धिधर श्रीसप्तर्षीश्वरा·! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं चारणार्द्धिधर श्रीसप्तर्षीश्वरा:! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठ ।
ॐ ह्रीं चारणार्द्धिधर श्रीसप्तर्षीश्वरा·! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

शुभ-तीर्थ-उदभव-जल-अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कद-निकंद-कारण, शुद्ध घट भरवायकैं।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूं।।

ॐ ह्रीं चारणार्द्धिधर-श्रीमन्व स्वरमन्व निचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस जय-मित्रर्षिभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द, मन्द घिसायकैं।
तसु गंध 'प्रसरित दिग-दिगन्तर, भर कटोरी लायकैं।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्य चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खण्ड-वर्जित, मिष्ट राजन भोग के।
कलधौत-थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछे, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चूने निज कर चावके।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्य· पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नाना भाँति चातुर, रचित शुद्ध नये-नये।
सदमिष्ठ लाडू आदि भर बहु, पुरटके थारा लये।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अति ज्वलित जगमग-ज्योतिजाकी, तिमिर, नाशनहार सो।। मन्वादि०।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गन्धित होत जाकर, धूप दश-अंगी कही।
सो लाय मन-वच-काय शुद्ध, लगाय कर खेऊं सही।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वाादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकैं।
द्रावणी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर भर लायकैं।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरूवर, दीप धूप सुलावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ कीजे पावना।। मन्वादि०।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वन्दूं ऋषिराजा धर्म-जहाजा, निज-पर-काजा करत भले।
करूणा के धारी गगन-बिहारी दुख अपहारी भरम दले।।
काटत जम-फन्दा भवि-जन वृन्दा, करत अनन्दा चरणन में।
जो पूजैं ध्यावैं मंगल गावैं फेर न आवैं भव-वन में।।

छन्द पद्धरी

जय श्रीमन्व मुनिराजा महन्त, त्रस-थावर की रक्षा करन्त।
जय मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा रस-पूरित अंग अंग।।
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप।
जय पंच अक्षत जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान।।
जय निचय सप्त सत्वार्थ, भास, तप-रमातनों तनमें प्रकाश।
जय विषय-रोध सम्बोध भान, परणति के नाशन अचल ध्यान।।
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजाल वत जगत-जाल।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज परणति में पायों विराम।।
जय आनन्द घन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप।
जय मद-नाशन जयवानदेव, निरमद विचरत सब करत सेव।।
जय जयहिं विनय लालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान।
जय कृशित-काय तपके प्रभाव, छवि छटा उड़ति आनन्द दाय।।
जय मित्र सकल जगके सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र।
जय चन्द्र वदन राजीव नैन, कबहूं विकथा बोलत न बैन।।
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरापुर मंझार, तंह मरी रोग को अति प्रचार।।
जय जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई बाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमन सदा नित जोड़ हस्त।।
जय ग्रीषम-ऋतु पर्वत मंझार, नित करत अतापन योगसार।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहूं रंच चलत नहि मन-सुमेर।।
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्दकार।
जय वर्षा-ऋतु मे वृक्ष तीर, तंह अति शीतल झेलत समीर।।
जय शीत-काल चौपट मंझार, कै नदी-सरोवर-तट-विचार।
जय निवसत ध्यानारुढ़, होय रंचक नहिं मटकत रोम कोय।।
जय मृतकासन बज्रासनीय गोदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार।
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भंडार, दारिद्रतनी दुख होय छार।।
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईति भीति सब नसत जात।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक।।

(छन्द रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लक्ष्मी धारी।
परमपूज्य पद धरैं सकल जग के हितकारी।।
जो मन वच तन शुद्ध, होय सेवै औ ध्यावै।
सो जन 'मनरँगलाल', अष्ट ऋद्धिनकौं पावै।।

दोहा

नमन करत चरनन परत, अहौं गरीब निवाज।
पच परावर्तन नितैं, निरवारो ऋषिराज।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्य पूर्णार्घ निर्वपामीति स्वाहा।

सरस्वती पूजा

जन्म जरा मृत्यु छय करै, हरै कुनय जड़रीति
भवसागरसो ले तिरै, पूजै जिन वच प्रीति।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

छीरोदधिगंगा विमल तरंगा, सलिल अभगा सुखसंगा।
भरि कञ्चन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचगा।।
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारदपद वंदो, मन अभिनंदो पापनि कंदों, दाह हरी।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं, चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई की रति गाई, होहु सहाई, मात ममं।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायो, शीलबढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे ।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया, मिष्ट महा।
पूजूंथुति गाउं, प्रीति बढ़ाउं, क्षुधा नशाउं, हर्ष लहा।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

करि दीपक जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हमघटभासक, ज्ञानबढ़ै।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति,स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावक मैं, धर, धूप मनोहर, खेवत हैं।
सब पाप जलावै, पुण्य कमावैं, दास कहावैं, सेवत हैं।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोदभवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोदभवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयननसुखकारी, मृदुगुणधारी, उज्ज्वलभारी, मोल धरैं।
शुभगंधसम्हारा, वसन निहारा, तुम तनधारा, ज्ञान करै।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोदभवसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञान प्राप्तये वस्त्र निर्वपामीति स्वाहा।

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति फल लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावैं।। ती०।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीत स्वाहा।

जयमाला

सोरठा— ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमोंभक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै।।

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृत अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं।।

तीजो ठाना अंग सुजान, सहस वियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहार, चौसठ सहस लाख इक धारं।।
पञ्चम व्याख्या प्रज्ञापति दरसं, दोय लाख अटठाइस सहसं।
छटठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पांच लाख छप्पन हज्जारं।।
सप्तम उपासकाध्यायनंगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अन्तकृतं दश ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं।।
नवम अनुत्तरश सुविशाल, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानव सोल हजारं।।
ग्यारम सूत्रविपाक सुभाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोडि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु शाखं।।
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़िपनवेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं सहित पञ्चपद मिथ्याहन हैं।
इकसौ बारह कोडि बखानों, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पञ्च अधिकाने, द्वादश अङ्ग सर्व पद माने।।
कोड़ि इकावन आठ हि लाख, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकीस शिलोक बताये, एक एक पद के ये गाये।।
दोहा— जा वानी के ज्ञान तै, सूझै लोक अलोक
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोदभवसरस्वतीदेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाणक्षेत्र पूजा

सोरठा:— परमपूज्य चौबीस, जिहं जिहं थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मन वच तन पूजा करौ।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

गीता छन्द

शुचि छीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक झारी में भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुर कैलाशकों।

पूजौं सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल, शीतल विस्तारौं।
भव-तापकौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

मोती-समान अखण्ड तन्दुल,अमल आनन्द धरि तरौं।
औगुन हरो गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मनका हरौं।
दुख-धाम-काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज अनेकप्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्कनर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीप निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करम-पुञ्ज जलाय दीज्यौ, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपापमीति स्वाहा।

बहु फल मंगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसौं निरवरौं।
निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु फल, दीप, धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा— श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलाशदिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं।।

चौपाई

नमों ऋषभ कैलाशपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौ, सनमति पावापुर अभिनन्दौं।।
वन्दौं अजित अजित-पद-दाता, वन्दौं सम्भव भव-दुःख घाता।
वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक, वन्दौसुमति-सुमति के दायक।।
वन्दौ पदम मुकति-पदमाकर, वन्दौ सुपास आश-पासाहर।
वन्दौ चन्द्रप्रभ प्रभुचन्दा, वन्दौ सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा।।
वन्दौ शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयांस श्रेयांस महीतल।
वन्दौ विमल विमल उपयोगी, वन्दौ अनंत अनंत-सुखभोगी।।
वन्दौं धर्म धर्म-विस्तारा, वन्दो शांति शांति-मन-धारा।
वन्दौ कुन्थु कुन्थु-रखवालं वन्दौ अर अरि-हर गुणमालं।।
वन्दौ मल्लि काम-मल-चूरन, वन्दौ मुनिसुव्रत व्रत-पूरन।
वन्दौ नमि-जिन नमित-सुरासुर, वन्दौं पार्श्व पार्श्व भ्रम-जग-हर।।
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखरसम्मेद-महागिरि भूपर।
एकबार वन्दै जो कोई, ताहि नरक-पशु-गति नहि होई।।
नरपतिनृप सुर शक्र कहावे, तिहुं जग-भोग भोगि शिव पावै।
विघन-विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौ भवतारी।।
घत्ता- जो तीरथ जावै पाप मिटावैं, ध्यावै गावै भगति करैं।
ताको जस कहिये सम्पति लहिये, गिरिके गुण को बुध उचरै।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाणकाण्ड भाषा

दोहा·— वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित, सिरनाय।
कहूं काण्ड निर्वाण, की, भाषा सुगम बनाय।।

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौ भाव-भगति उर धार।।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसमेद जिनेसुर बीस, भावसहित, वन्दौं निश-दीश।।
वरदत्तराय अरु इन्द मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोडि।, वन्दौ भावसहित कर जोड़ि।।
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात।
सम्बू प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूं तसु पाय।।
रामचद्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पांच कोणि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वन्दौं निरधार।।
पाण्डव तीन द्रविड-राजान, आठ कोडि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुजयगिरिके सीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस।।
जे बलभद्र मुकतिमें, गये, आठ कोडि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहु काल।।
राम हणू सुग्रीव सुडील गव गवाख्य नील महानील।
कोडि निन्याणवें मुक्ति पयान, तुंगगिरी वन्दौ धरि ध्यान।।
नग अनंग कुमार सुजान, पाच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास।।
रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहं छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोडि वन्दौं भव पार।।
बडवानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जू कर्ण, ते वन्दौ भव-सागर-तर्ण।
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मंझार।
चेलना-नदी-तीरके पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास।।

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरूदत्तादि मुनीसुर जहां, मुक्ति गये वन्दौ नित तहां।।
बाल महाबल मुनिवर दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मझार, ते वन्दौं नित सुरत संभार।।
अचलापुर की दिशा ईसान, तहां मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढे तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूंचित लाय।।
वंसस्थल वन के ढिंग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूं प्रणाम।।
जसरथ राजा के सुत कहे देश कलिंग पांचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि-प्रमान, वन्दन करूं जोर जुग पान।।
समवसरण श्री पार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज।।
तीन लोक के तीरथ जहां, नित प्रति वन्दन कीजैं तहां।
मन-वच-कायसहित सिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय।।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहि त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल।।

निर्वाणकांड गाथा

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्ज-जिणाहो।
उज्जंतेणेमि-जिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो।। 1।।
वीसंतु जिण-वरिंदा, अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा।
सम्मेदे गिरि-सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।
वरदत्तो य वरगो, सायरदत्तो य तारवरणयरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।
णेमि-सामी पज्जुण्णो, सबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
वाहत्तरि-कोडीओ, उज्जंते सत्त-सया वंदे।।
राम-सुआविण्णि जणा, लाड-णरिंदाण पंच कोडीओ।
पावाए गिरि-सिहरे, णिव्वाण गया णमों तेसिं।।
पंडु-सुआ तिण्णि जणा, दविड-णरिंदाण पंच कोडीओ।
सत्तुंजय, गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमों तेसिं।।

सत्तेव य बलभद्दा,-जदुव-णरिंदाण अट्ठ कोडीओ।
गजपंथे गिरि-सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।
राम-हणू सुग्गीवो, गवय गवक्खो य णील महणीलो।
णवणवदी कोडीओ, तुंगीगिरि-णिव्वुदे बंदे।।
अंगाणंगुकुमारा, विक्खा-पंचद्ध-कोणि-रिसिसहिया।
सुवण्णगिरि-मत्थयत्थे, णिव्वाण गया णमों तेसिं।।
दहमुह-रायस्य सुआ, कोडी-पंचद्ध-मुणिवरें सहिया।
रेवा-उहयम्मि तीरे, णिव्वाण गया णमों तेसिं।।
रेवा-णाईए तीरे, पच्छिम-भायम्मि सिद्धवर-कूडे।
दो चक्की दह कप्पे, आहुट्ठय-कोडि-णिव्वुदे वंदे।।
वडवाणी-वर-णयरे, दक्खिण-भायम्मि चूलगिरि-सिहरे।
इंदजिय-कुंभयणो, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।
पावागिरि-वर-सिहरे, सुवण्णभद्दाइ-मुणिवरा चउरो।
चलणा-णाई-तडग्गे, णिव्वाण गया णमो तेंसिं।।
फलहोडी-वर-गामे पच्छिम-भायम्मि दोणगिरि सिहरे।
गुरुदत्ताई-मुणिंदा, णिव्वाण गया णमों तेसिं।।
णायकुमार-मुणिंदो, बालि महाबालि चेव अज्झेया।।
अट्ठावय-गरि-सिहरे, णिव्वाण गया णमों तेसिं।
अच्चलपुर-वर-णयरे, ईसाणभाए मेढगिरि-सिहरे।
आहुट्ठय-कोडीओ, णिव्वाण गया णमों तेसिं।
वंसत्थल-वण-णियरे, पच्छिम-भायम्मि कुंथगिरि-सिहरे।
कुल-देस-भूषण-मुणी, णिव्वाण गया णमों तेसिं।
जसरह-रायस्य सुआ, पंचसया कलिंग-देसम्मि।
कोडिसिलाएं कोडि मुणी, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।
पासस्स समवसरणे, गुरुदत्त-वरदत्त-पंच रिसिपमुहा।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमों तेसिं।।
जे जिणु जित्थु तत्था, जे दु गया णिव्वुदिं परम।
ते वंदामि य णिच्चं, तिरयण-सुद्धो णमंस्सामि।।
सेसाणं तुरिसीणं, णिव्वाणं जम्मि-जम्मि ठाणम्मि।
ते हं वदे सव्वे, दुक्खक्खय-कारणट्ठाए।।

पंचमेरू पूजा

(कविवर श्री द्यानतराय जी कृत)

तीर्थंकरों के न्हवनजलतैं भये तीरथ शर्मदा।
तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पचंमेरुन की सदा।।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब, गनत मूल विराजहीं।
पूजौं असीजिनधामप्रतिमा, हौहि सुख, दुख भाजहीं।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्रवतरावतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।
ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सीतलमिष्टसुवास मिलाय, जलसों पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पांचो मेरुअसीजिनधाम, सब प्रतिमाजी को करो प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो जल।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसों पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पांचों०।।2।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो चदन।

अमल अखड सुगध सुहाय, अच्छतसों पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पांचो०।।3।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो अक्षतम्।

वरन अनेक रहे महकाये, फूल सों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।।4।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिंबेभ्यो पुष्पं।

मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।।5।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो नैवेद्य।

तमहर उज्जवल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।।6।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो दीपं।

खेऊ अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजो श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।। 7।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो धूप।

सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुभाय, फलसो पुजो श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।। 8।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो फल।

आठ दरबमय अरघ बनाय द्यानत पूजो श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पांचों०।। 9।।

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थिजिनबिबेभ्यो अर्घ।

जयमाला

सोरठा— प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदिर कहा।
विद्युनमाली नाम, पंचमेरु जग में प्रगट।।

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजैं, भद्रशाल वन भूपर छाजे।
चैत्यालय चारो सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी।।
उपर पचशतकपर सोहैं, नदनवन देखत मन मौहै।
चैत्यालय चारो सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी।।
साढे बासठ सहस ऊचाई, वन सुमनस सौभे अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी मनवचतन वदना हमारी।।
ऊचा जोजन सहस चत्तीसं पांडकवन सोहैं गिरिसीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी।।
चारों मेरु समान बखानै, भूपर भद्रसाल चहुंजानैं।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, भनवचतन वदना हमारी।।
ऊचे पांच शतक पर भाखे, चारो नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वदना हमारी।।
साढे पचपन सहस उतगा, वन सोमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी।
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारो वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी।।
सुरनर चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।

चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी।।

दोहा—पंचमेरु की आरती, पढ़ै सुने जो कोय।
'द्यानत फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धितजिनचैत्यालयस्थितजिनबिंबेभ्यो महाअर्घं।

श्री नंदीश्वरद्वीप-अष्टान्हिका पूजा

सरब परब में बड़ो अठाई परब है।
नंदीश्वर सुर जाँहिं लेय वसु दरव है।।
हमैं सकति सो नाहिं इहां करि थापना।
पूजैं जिनगृह प्रतिमा है हित आपना।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपेद्विपचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवोषट्।
ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपेद्विपचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ· ठः।
ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपेद्विपचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

कंचनमणिमयभृंगार, तीरथ नीर भरा।
तिहुं धार दयी निरवार, जामन मरन जरा।
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिनप्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरो।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तर दक्षिणे द्विपंचासज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं।। 1।।

भवतपहर शीतल वास, सो चंदन नाहीं।
प्रभु यह गुण कीजै सांच, आयो तुम ठांहीं ।। नंदी०।। चंदनं०।।
उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सौहे।।
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को हैं।। नंदी०।। अक्षतं०।।
तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनिसौं।
लहूं शीललक्ष्मी एवं, छूटों शूलनसौं।। नंदी०।। पुष्पं०।।
नेवज इन्द्रियबलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सो है सार, अचरज है पूरा।। नंदी०।। नैवेद्यं०।।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन माहिं लसै।
टूटे करमन की राश, ज्ञानकणी दरसै।। नंदी०।। दीप०।।
कृष्णागरुधूपसुवास, दशदिश नारि वरै।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै।। नंदी०।। धूपं०।।
बहुविधिफल ले तिहुँकाल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिवफल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं।। नंदी०।। फलं०।।
यह अरघ कियो निजहेत, तुमको अरपतु हो।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतुहों।। नंदी०।। अर्घं०।।

जयमाला

दोहा— कार्तिक फागुन साढ के, अन्त आठ दिन मांहि।
नदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहि।

एक-सौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश मे लहा।।
अट्ठमो दीप नदीश्वर भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। टेक०।। 1।।
चार दिशी चार अंजनगिरि राजहि।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुन्दरं।। भौन०।। 2।।
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल जलभरी।।
चहुंदिशि चार वन लाख जोजन वरं।। भौन०।। 3।।
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं।
बावरीकौन दो माहि दो रति करं।। भौन०।। 4।।
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।
चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे।
एक इक सीस पर एक जिन मंदिरं।। भौन०।। 5।।
बिंब अठ एकसौ रतनमयी सोहही।
देवदेवी सरब नयन मन मोहही।
पाचसै धनुष तन पद्म आसन परं।। भौन०।। 6।।

लाल नख मुख नयम स्याम अरु श्वेत हैं।
स्यामरंग भौंह सिरकेश छवि देत है।
बचन बोलत मनों हंसत कालुष हरं।। भौन०।। 7।।
कोटि शशि-भानदुति तेज छिप जात है।
महा वैराग परिणाम ठहरात है।
बयन नहिं कहै लखि होत सम्यक् धरं।। भौन०।। 8।।
सो०— नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमा महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनोनाम, यहीं भगति शिवसुख करै।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपचाशजिनालय यस्थजिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घं।

श्री सोलहकारण पूजन

अडिल्ल— सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरुपे ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसों।
हमहू षोडष कारन भावैं भावसौं।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि! अत्र अवतर अवतर। सवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ· ठः।
ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई— कंचनझारी निरमल नीर, पूजौं जिनवर गुण-गम्भीर।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पदपाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। 1।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जल।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवर के पाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 2।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो ससारतापविनाशनाय चदन।

तन्दुल धवल सुगंध अनूप पूजौं जिनवर तिहुंजगभूप।
परमगुरु हो जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 3।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान।

फूल सुगंध मधुप गुन्जार, पूजो जिनवर जग आधार।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 4।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्प।

सद नेवज बहुविधि पकवान, पूजो श्री जिनवर गुणखान।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 5।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य।

दीपकजोति तिमिर छयकार, पूजौं श्रीजिनवर गुणखन।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 6।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप।

अगर कपूर गंध शुभखेय, श्रीजिनवर आगे महकेय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 7।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूप।

श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजो जिन वांछितदातार।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 8।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घम।

जल फल आठों, दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करो मनलाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो।। दरशवि०।। 9।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घम्।

सोलह अंगों के सोलह अर्घ

सवैया तेईसा

दर्शन शुद्ध न होवत जों लग, तों लग जीव मिथ्याती कहावे।
काल अनंत फिरे भवमें, महा दुखन को कहुं पार न पावे।।
दोष पचीस रहित, गुण-अम्बुधि, सम्यक दरशन शुद्ध ठरावै।
'ज्ञान' कहे नर सोहि बडो, मिथ्यात्व तजे जिन-मारग ध्यावै।।

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धि भावनायै नम अर्घं।। 1।।

देव तथा गुरु राय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी।
पाप के हारक काम के छारक, शल्य-निवारक कर्म-निवारी।।
धर्म के धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी।
'ज्ञान' कहे विनयो सुख कारक, भाव धरो मन राखो विचारी।।

ॐ ह्रीं विनय सम्पन्नता भावनायै नमः अर्घं।। 2।।

शील सदा सुख कारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजे।
दानव देव करे तसु सेव, विषानल भूत पिशाच पतीजे।।
शील बड़ो जग में हथियार, जुशील को उपमा काहे की दीजे।
'ज्ञान' कहे नही शील बराबर, ताते सदा दृढ़ शील धरीजे।।

ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रत भावनायै नमः अर्घं।। 3।।

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे।
द्वादस दोउ अनेक हुं भेद, सुनाम मती श्रुति पंचम पावे।।
चार हुं भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे।
'ज्ञान' कहे श्रुत भेद अनेक जु लोकालोकहि प्रगट दिखावे।।

ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावनायै नम अर्घं।। 4।।

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संयम सज्जन ए सब खोटो।
मन्दिर सुन्दर काय सखा सबको इसको हम अंतर मोटो।।
भाउके भाव धरो मन भेदन, नाहिं संवेग पदारथ छोटो।
'ज्ञान' कहे शिव साधन को जैसो, साह को काम करे जु बणोटो।।

ॐ ह्रीं सवेग भावनायै नम अर्घं।। 5।।

पात्र चतुर्विध देख अनूपम, दान चतुर्विध भावसु दीजे।
शक्ति-समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे।।
देवत जे नर दान सुपात्रहि, तास अनेकहिं कारण सीजे।
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सु भूमि महासुख लीजे।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्याग भावनायै नमः अर्घं।। 6।।

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति समान उपोषण कीजे।
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे।
भाव धरी तप घोर करो नर, जन्म सदा फल काहे न लीजे।
'ज्ञान' कहे तप जे नर भावत ताके अनेकहिं पातक छीजे।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपो भावनायै नमः अर्घं।। 7।।

साधुसमाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे।

साधु की संगति धर्म को कारण, भक्ति करे परमारथ सीजे।।
साधु समाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक में गाजे।
'ज्ञान' कहे यह साधु बड़ो, गिरिश्रृंग गुफा बिच जाय बिराजे।।

ॐ ह्रीं साधु समाधि भावनायै नम· अर्घं।। 8।।

कर्म के योग व्यथा उदई मुनि, पुंगव कुन्तसभेषज कीजे।
पीत कफान लसास भगन्दर, ताप को सूल महागद छीजे।।
भोजन साथ बनायके औषध, पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे।
'ज्ञान' कहे नित ऐसी वैयावृत्य करे तस देव पतीजे।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरण भावनायै नम· अर्घं।। 9।।

देव सदा अरिहन्त भजो जेई, दोष अठारा किये अति दूरा।
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किए चक चूरा।।
दिव्य-अनन्त-चतुष्टय शोभित, घोर मिथ्यान्ध-निवारण सूरा।
'ज्ञान' कहे जिनराज अराधो, निरंतर जे गुण मंदिर पूरा।।

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्ति भावनायै नम अर्घं।। 10।।

देवत ही उपदेश अनेक सु-आप सदा परमारथ-धारी।
देश-विदेश विहार करें, दश धर्म धरे भव पार उतारी।।
ऐसे अचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी।
'ज्ञान' कहे गुरु भक्ति करो नर, देखत ही मन माहि विचारी।।

ॐ ह्रीं आचार्य भक्ति भावनायै नम अर्घं।। 11।।

आगम छन्द पुराण पढावत, सहित तर्क वितर्क बखाने।
काव्य कथा नव नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने।।
ऐसे बहु श्रुत साध मुनीश्वर, जो मनमे दोउ भाव न आने।
बोलत 'ज्ञान' धरी मनसान जु, भाग्य विशेषते जानहिं जाने।।

ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्ति भावनायै नम· अर्घं।। 12।।

द्वादस अंग उपांग सदागम, ताकी निरंतर भक्ति करावे।
वेद अनूपम चार कहे तस, अर्थ भले मन मांहि ठरावै
पढ़ बहु भाव लिखो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ी पूज रचावे।
'ज्ञान' कहे जिन आगम-भक्ति, करो सद्बुद्धि बहु श्रुत पावे।।

ॐ ह्रीं प्रवचन भक्ति भावनायै नम अर्घं।। 13।।

भाव धरे समता सब जीवसु स्तोत्र पढ़े मुख से मनिहारी।
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसुं, वंदन देव-तणों भव तारी।।

ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी।
'ज्ञान' कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी।।
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणि भावनायै नमः अर्घ।। 14।।
जिन-पूजा रचो परमारथसुं, जिन आगे नृत्य महोत्सव ठाणों।
गावत गीत बजावत ढोल, मृदंगके नाद सुधांग वखाणो।।
संग प्रतिष्ठा रचौ जल-जातरा, सद् गुरु को साहमो कर आणो।।
'ज्ञान' कहे जिन मार्ग प्रभावन, भाग्य-विशेषसुं जानहिं जाणो।।
ॐ ह्रीं मार्ग प्रभावना भावनायै नमः अर्घ।। 15।।
गौरव भाव धरो मन से मुनि-पुगङ्ग्वको नित वत्सल कीजे।
शील के धारक भव्य के तारक, तासु निरंतर स्नेह धरी जे।।
धेनु यथा निज बालक के,अपने जिय छोडि न और पती जे।
'ज्ञान' कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे।।
ॐ ह्रीं वात्सल्य भावनायै नमः अर्घ।। 16।।

जयमाला

दोहा:— षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास।
पाप पुण्य सब नाश कै, ज्ञान भान परकास।। 1।।

चौपाई

दरश विशुद्धि धरै जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महा धारै जो प्राणी, शिववनिता की सखी बखानी।
शील सदा दृढ़ जो नर पालैं, सो औरन की आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करैं मनमाहीं, ताके मोहमहातम नाहीं।।
जो संवेग भाव विसतारैं, सुरगमुकतिपद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखे, इह भव जस पर भव सुख देखै।।
जो तपतपे खपे अभिलाषा, चूरे करमशिखर गुरु भाषा।
साधु समाधि सदा मन लावै, तिहुंजग भोग भोगि शिव जावै।।
निश दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भवनीर तिरैया।
जो अरहंत भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै।।
जो आचारज भगति करै है, सो निरमल आचार धरै है।
बहुश्रुतवंतभगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई।।
प्रवचन भगति करे जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्ददाता।
षटआवश्यक नित जो साधै, सोही रतनत्रय आराधै।।

धरम प्रभाव करैजे ज्ञानी, तिन शिव मारग रीति पिछानी।
वत्सल अग सदा जो ध्यावे, सो तीर्थङ्कर पदवी पावै।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्य· पूर्णार्घम्।

दोहा— एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव इन्द्र नरवंद्य पद, 'द्यानत' शिव पद होय।।
।। इत्याशीर्वाद।।

श्री दशलक्षण धर्म पूजा

उत्तम छिमा, मारदव, आरजव, भाव हैं।
सत्य शौच संजम, तप, त्याग, उपाव है।।
आकिंचन, ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं।
चहुंगति दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।। 1।।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर अवतर।सवौषट्।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ ठ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा·- हेमाचलकी धार, मुनि चित सम शीतल सुरभि।
भव आताप निवार, दशलक्षण पूजो सदा।। 1।।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसयमतपत्यागआकिचन्य ब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्मेभ्यो जल।
चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।। भव०।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चन्दन।। 2।।
अमल अखण्डितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ। भव०।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान्।। 3।।
फूल अनेक प्रकार, महकैं ऊरधलोकलों। भव०।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्प।। 4।।
नेवज विविध निहार, उत्तम षट्रस संजुगत। भव०।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्य।। 5।।
बाति कपूर सुधार, दीपक ज्योति सुहावनी। भव०।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीप।। 6।।
अगर धूप विस्तार फैले सर्व सुगन्धता। भव०।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं।। 7।।

फलकी जाति अपार, घ्राननयन मन मोहने। भव०।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं।। 8।।

आठों दरब संवार, द्यानत अधिक उछाहसों। भव०।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अर्घं।। 9।।

अंग पूजा

पीड़े दुष्ट अनेक, बांध मार बहु विधि करें।
धरिये क्षिमा विवेक, कोप न कीजैपीतमा।।
उत्तम छिमा गहोरे भाई, इह भव जस पर भव सुखदाई।
गालिसुनि मन खेद न आने, गुनको औगुन कहै अयानो।।
कहि है अयानो वस्तु छीने, बांध मार बहु विधि करै।
धरतैं निकारे तन विदारै, बैर जो न तहां धरैं।।
तैं करम पूरव किये खोटे, सहे क्यों नहीं जीयरा।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्राणी, साम्यजल ले सीयरा।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा धर्मगाय अर्घम्।। 1।।

मान महाविषरूप, करहिं नीच गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप सुख पावैं प्राणी सदा।
उत्तम मार्दव गुन मनमाना, मान करन कौ कौन ठिकाना।
बस्यो निगोद माहितें आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया।।
रुकन विकाया भाग बशतें, देवइक इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हुआ, भूप कीड़ो में गया।।
जीतव्य-जोवन धन-गुमान, कहा करै जल बुदबुदा।
करि विनय बहु गुन बड़े जनकी, ज्ञान की पावै उदा।

ॐ ह्रीं उत्तममार्दव धर्मगाय अर्घं।। 2।।

कपट न कीजे कोय चोरन के पुर न बसैं।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा।।
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रञ्चक दगा बहुत दुखदानी।
मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसों करिये।।
करिये सरल तिहुं जोग अपने, देख निरमल आरसी।

मुख करे जैसा, लखे तैसा कपट प्रीति अगांरसी।।
नहीं लहै लक्ष्मी अधिक छल करि, करम बंध विशेषता।
भय त्याग दूध विलाव पीवै, आपदा नहि देखता।।

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जव धर्मगाय अर्घ।। 3।।

कठिन वचन मति बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।
उत्तम सत्यवरत पालीजै, पर विश्वास घात नहिं कीजैं।
साँचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।।
पेखों तिहायत पुरुष सांचे, को दरव सब दीजिये।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा, सांच गुण लख लीजिए।।
ऊचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
बच झूठ सेती नरक पहुंचा, सुरग मे नारद गया।।

ॐ ह्रीं उत्तम सत्य धर्मगाय अर्घ।। 4।।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सौं।।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ों संसार में।।
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पापका बाप बखाना।
आशापाश महादुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्राणी।।
प्राणी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञान ध्यान प्रभावतें।
नित गगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचि दोष सुभावतें।।
ऊपर अमल-मल भरयो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैंली सुगुन थैली, शौच गुन साधू लहै।।

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मगाय अर्घ।। 5।।

काय छहों प्रतिपाल, पचेन्द्री मन वश करो।
सजंम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं।
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजे अध तेरे।
सुरग नरक पशुगति में नाही, आलस हरन करन सुख ठाहीं।।
ठाहीं पृथी जल आग मारूत, रूंख त्रस करूना धरो।।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहि जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में।।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम मुख बीच में।।

ॐ ह्रीं उत्तम सयम धर्मगांय अर्घं।।6।।

तप चाहैं सुरराय, करमशिखर को वज्र है।
द्वादस विधिसुखदाय, क्यों न करैं निज सकति सम।।
उत्तम तप सब माहिं बखाना, करमशैल को वज्र समाना।
वस्यो अनादि निगोद मंझारा, भूविकलत्रय पशु तन धारा।।
धारा मनुष तन महा दुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता।।
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरें।
नरभव अनूपम कनक घर पर मणीमयी कलसा धरें।।

ॐ ह्रीं उत्तम तप धर्मगाय अर्घं।।7।।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिये।
धन बिजुरी उनहार, नरभव लाहो लीजिये।।
उत्तम त्याग कह्यो जगसारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचे राग द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारे।।
दोनों संभारै कूप जलसम, दरब धरमें परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया।।
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध कों।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोधकों।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मगाय अर्घं।।8।।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करें मुनिराज जी।
त्रिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये।।
उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह चिन्ता दुख ही मानो।
फांस तनकसी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै।।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन नगन ठाड़े, सुर असुर पायनि परैं।।
घरमाहिं त्रिसना जो घटावें, रुचि नहीं संसार सौं।
बहुधन बुराहू भला कहिये, लीन पर उपकारसौं।।

ॐ ह्रीं उत्तमआंकिचन्यधर्मगाय अर्घं।।9।।

शील बाड़ नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहुं सफल नरभव सदा।।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो, माता बहिन सुता पहिचानो।
सहै बानवरषा बहु सूरे, टिकै न नैन बाण लखि कूरे।।
कूरे तिया के अशुचि तन में कामरोगी रति करें।
बहु मृतक सडहिं मसान माहि, काग ज्यों चोंचें भरे।।
संसार में विषबेल नारी, तजि गये योगीश्वरा।
द्यानत धरम दसपैंडि चढ़िकै, शिवमहल में पग धरा।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मगाय अर्घं।। 10।।

समुच्चय जयमाला

दोहा— दश लक्षण वंदौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहूँ आरती भारती, हम पर होहु सहाय।।
उत्तम छिमा जहां मन होई, अन्तर बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नाना भेद ज्ञान सब भासै।। 1।।
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य वचन मुख बौलै, सो प्राणी संसार न डोलै।। 2।।
उत्तम शौच लोभ परिहारी, सन्तोषी गुण रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर भव सफल करै ले साता।। 3।।
उत्तम तप निर्वांछिंत पालै, सो नर करम शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोग भूमि-सुर-शिवसुख होई।। 4।।
उत्तम आकिंचन व्रत धारै परम समाधि दशा विस्तारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुर सहित मुकति फल पावै।। 5।।
दोहा— करै कर्म की निर्जरा, भव पींजरा विनाश
अजर अमर पद को लहै, 'द्यानत' सुख कीराशि।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दश लक्षण धर्माय महार्घं निर्वपामिति स्वाहा।

रत्नत्रयपूजा भाषा

दोहा- चहुँगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावकजलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर अवतर। सवौषट्।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ ठः।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितौ भव भव वषट्।

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम रोग निरवार, सम्यक रत्नत्रय भजूं।।1।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्ममृत्यु रोगविनाशनाय जलं।
चंदनकेसरगरि, परिमलमहासुगन्धमय।। जन्म०।।2।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चन्दन।
तंदुलअमलचितार, वासमतीसुखदास के।। जन्म०।।3।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान्।
महकैं फूलअपार, अलिगुंजै ज्यों थुति करैं।। जन्म०।।4।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय कामवाण विध्वंसनाय पुष्प।
लाडूबहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्ध युत।। जन्म०।।5।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं।
दीप रतनमयसार, जोतप्रकाशी जगतमै।। जन्म०।।6।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहांधकारविनाशनाय दीप।
धूप सुवास विथार, चंदनअगर कपूर की।। जन्म०।।7।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्ट कर्मदहनाय धूपं।
फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल।। जन्म०।।8।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं।
आठ दरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये।। जन्म०।।9।।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घम्।
सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिवमगतीनों मयी
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजौं व्रतसहित

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ पद प्राप्तये पूर्णार्घम्।

सम्यक दर्शन पूजा

दोहा- सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट मुक्तजीवसोपान।
ज्ञानचरित जिहंबिन अफल सम्यकदर्श प्रधान।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसमयग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टागसमयग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं अष्टागसमयग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा-नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यक्दर्शनसार, आठ अंग पूजों सदा।।1।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय जल।

जलकेसर घनसार, तापहरै सीतलकरै।। सम्यग्दर्शन०।। 2।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय चन्दन।।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशैसुख भरै।। सम्यग्दर्शन०।। 3।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय अक्षतान।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मनशुचिकरै।। सम्यग्दर्शन०।। 4।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय पुष्प।

नेवजविविधिप्रकार, छुधाहरैथिरताकरै ।। सम्यग्दर्शन०।। 5।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय नैवेद्य।

दीपज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।। सम्यग्दर्शन०।। 6।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय दीप।

धूप घ्रानसुखकार, रोगविघन जडता हरै।। सम्यग्दर्शन०।। 7।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय धूप।

श्रीफल आदिविथार, निहचै सुरशिवफल करै।। सम्यग्दर्शन०।। 8।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय फल।

जलगधाक्षतचारु, दीपधूपफलफूल चरू।। सम्यग्दर्शन०।। 9 ।।

ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शनाय अर्घम्।

जयमाला

दोहा—आप आप निहचै लखै, तत्वप्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार।। 1।।

सम्यक् दरशनरतन गहीजै, जिनवचमैं संदेह न कीजै।
इहभव विभवचाहदुखदानी, परभवभोग चहै मत प्रानी।।
प्रानी गिलान न करि अशुची लखि, धरम गुरुप्रभु परखिये।
परदोष ढकिये, धरम डिगते को सुथिर, कर हरखिये।
चहुसधको वात्सल्य कीजै धरम की प्रभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहा फेर न आवना।। 2।।

ॐ ह्रीं अष्टागसहित पचविशतिदोषर हित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घम्।

सम्यकज्ञान पूजा

दोहा— पचभेद जाके प्रगट, ज्ञेय प्रकाशनभान।
मोह-पतन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यकज्ञान।। 1।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञान! अत्र अवतर अवतर। सवौषट।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ· ठ।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञान! अत्र मम सन्निहितौ भव भव वषट्।

नीरसुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजों सदा।। 1।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय जल।

जलकेसरघनसार, तापहरै शीतल करै।। सम्यकज्ञान०।। 2।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय चन्दनम्।।

अक्षत अनूप निहार, दारिद नाशैसुख भरै।। सम्यकज्ञान०।। 3।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय अक्षतान्।

पहुप सुवास उदार खेद हरै मन शुचि करै।। सम्यकज्ञान०।। 4।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय पुष्प।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करै।। सम्यकज्ञान०।। 5।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय नेवेद्य।

दीप जोति तमहार, धट-पट परकाशै महा।। सम्यकज्ञान०।। 6।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय दीप।

धूपघ्रानसुखकार, रोग विधन जड़ता हरै।। सम्यकज्ञान०।। 7।।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय धूप।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै।। सम्यकज्ञान०।। 8।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय फल

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु।। सम्यकज्ञान०।। 9।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय अर्घम्।

जयमाला

दोहा— आप-आप जानै नियत, ग्रथ पठन व्यौहार।
सशय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार।

सम्यकज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानो।

जाचो सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तप रीति गहि बहु मौन देकै, विनयगुन चितलाइये।
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान दर्पन देखना।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पट पेखना।
ॐ ह्रीं अष्टाविधसम्यकज्ञानाय पूर्णार्घम्।

सम्यक् चरित्र पूजा

दोहा— विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।
तीर्थंकर जाकौ धरै, सम्यकचारितसार।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चरित्र! अत्र अवतर अवतर। सवौषट्।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चरित्र! अत्र तिष्ट तिष्ट ठ· ठ·।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चरित्र! अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट्।

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्-चारितसार, तेरहविधि पूजौं सदा।। 1।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय जल।
जल केशरघनसार, ताप हरै शीतल करै।। सम्यकचारित०।। 2।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय चदन।
अछत अनूप निहार दारिद नाशै सुख भरे। सम्यकचारित०।। 3।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय अक्षतान्।
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचिकरै। सम्यकचारित०।। 4।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक् चारित्राय पुष्प।
नेवज विविध प्रकार, क्षुधाहरै थिरता करै। सम्यकचारित०।। 5।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यम्।
दीपजोति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्यकचारित०।। 6।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीप।
धूपघ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकचारित०।। 7।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धुप।
श्रीफल आदि विथार, निहचै, सुरशिवफल करै। सम्यकचारित०।। 8।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं।
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु। सम्यकचारित०।। 9।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ।

जयमाला

दोहा- आप आप थिरनियत नय, तप संजम व्योहार।
स्वपरदया दोनों लिए, तेरह विध दुखहार।।1।।
सम्यकचारित रतन संभालो, पांच पाप तजि के व्रत पालो।
पंच समिति त्रयगुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन छीजै।।
छीजै सदा तनको जतन, यह परम संजम पालिये।
बहु रूल्यो नरक निगोदमाहीं विषयकषायनि टालिये।।
शुभकरमजोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है।।2।।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घम्।

समुच्चय जयमाला

दोहा-सम्यक्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय।
अंध पंग अरू आलसी, जुदे जलैं दवलोय।
आपै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबंध कट जावै।
तासौ शिवतिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावै।
ताको चहुंगति के दुख नाहीं, सो न परै भवसागर माहीं।
जनम जरामृत दोष मिटावै, जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै।
सोई दशलच्छनको साधै, सो सोलह कारण आराधै।
सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यकरनत्रय ध्यावै।
सौई शक्रचक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यकरनत्रय ध्यावै।
सोई लोका लोक निहारैं, परमानन्द दशा विसतारै।
आप तिरै औरन तिरवावै, जो सम्यक रतनत्रय ध्यावै।
एक स्वरूप प्रकाश निज वचन कह्यो नही जाय
तीन भेद व्यवहार सब द्यानत को सुखदाय
ॐ ह्री सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान, सम्यकचारित्राय महाअर्घं।

क्षमावाणी पूजा

छप्पयछंद-अंग क्षमा जिन धर्म तनों दृढ़ मूल बखानो।
सम्यक रतन संभाल हृदय में निश्चय जानो।।

तज मिथ्या विष मूल और चित निर्मल ठानो।
जिनधर्मी सों प्रीति करो सब पातक भानो।।
रत्नत्रय गह भविक जन, जिन आज्ञा सम चालिए।
निश्चय कर आराधना, कर्म राशि को जालिए।।

ओ ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयाय नम· अत्रावतरावतर सवौषट। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टकम्

क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।। टेक।।
नीर सुगन्ध सुहावनो, पद्म द्रह को लाय।
जन्म रोग निरवारिये, सम्यक् रत्न लहाय।। क्षमा०।। 1।।

प्रत्येक अग के पीछे नम बोलना है।

ओ ह्रीं 1 निशंकिताङ्गाय नम 2 निकाक्षिताङ्गाय नम 3 निर्विचिकित्साङ्गाय नम 4 निर्मूढताङ्गयै नम 5 उपगूहनाङ्गाय नम 6 स्थितिकरणाङ्गाय नम 7 वात्सल्याङ्गाय नम 8 प्रभावनाङ्गाय नम 9 ओ ह्रीं व्यजन व्यजिताय 10 अर्थ समग्राय 11 तदुभय समग्राय 12 कालाध्ययनाय 13 उपध्यानोपन्हिताय 14 विनयलब्धिसहिताय 15 गुरुवादापन्हवाय 16 बहु मानोन्मानाय 17 ओ ह्रीं अहिसा व्रताय 18 सत्य व्रताय 19 अचौर्यव्रताय 20 ब्रह्मचर्यवृताय 21 अपरिग्रहव्रताय 22 मनोगुप्तये 23 वचन गुप्तये 24 कायगुप्तये 25 ईर्यासमितये 26 भाषा समितये 27 एषणा समितये 23 आदान निक्षेपण समितये 29 प्रतिष्ठापना समितये नम जल।

केसर चन्दन लीजिये, संग कपूर घसाय।
अलि पंकति आवत घनी बास सुगन्ध सुहाय।। क्षमा।। 2।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यज्ञान, त्रयोदश विध सम्यक्चारित्रेभ्यो चन्दन।। 2।।

शालि अखंडित लीजिए, कंचन थाल भराय।
जिनपद पूजों भावसो, अक्षयपद को पाय।। क्षमा०।। 3।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यग्ज्ञान, त्रयोदशविध सम्यक्चारित्रेभ्यो अक्षतान्।।

पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगन्ध गुलाब।
श्रीजिन चरण सरोजकूं, पूज हरष चित चाव।। क्षमा०।। 4।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यचग्दर्शन, अष्टाग सम्यग्ज्ञान, त्रयोदश विध सम्यक्चारित्रेभ्यो पुष्प।।

शक्कर घृत सुरभी तनों, व्यंजन षट्रस स्वाद।
जिनके निकट चढ़ाय कर, हिरदे धरि आहलाद।। क्षमा०।। 5।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यगृज्ञान त्रयोदशविध सम्यकचारित्रेभ्यो नैवेद्य।।

हाटकमय दीपक रचो, बाति कपूर सुधार।
शोधक घृतकर पूजिये, मोह तिमिर निरवार।। क्षमा०।। 6।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यगृज्ञान, त्रयोदशविध सम्यकचारित्रेभ्यो दीप।।

कृष्णागर करपूर हो, अथवा दश विध जान।
जिन चरणां ढिग खेइये, अष्ट करम की हान।। क्षमा०।। 7।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग, सम्यगृज्ञान, त्रयोदशविध सम्यक्चारित्रेभ्यो धूप।।

केला अम्ब अनार हो, नारिकेल ले दाख।
अग्रधरों जिन पद तने, मोक्ष होय जिन भाख।। क्षमा०।। 8।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यगृज्ञान, त्रयोदशविध सम्यक्चारित्रेभ्यो फल।।

जल फल आदि मिलाइके, अरघ करो हरषाय।
दुःख जलाजलि दीजिए, श्रीजिन होय सहाय।। क्षमा०।। 9।।

ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टाग सम्यगृज्ञान, त्रयोदशविध सम्यक्चारित्रेभ्यो अर्घ।।

जयमाला

दोहा- उनतिस अंग की आरती, सुनो भविक चित लाय।
मन वच तन सरधा करो, उत्तम नर भव पाय।।

चौपाई

जैनधर्म में शक न आनै, सो निःशंकित गुण चित ठानै
जप तप कर फल वांछे नाहि, निःकांक्षित गुण हो जिस माहीं।। 1।।
परको देखि गिलान न आने, सो तीजा सम्यक् गुण ठाने।
आन देवको रंच न माने, सो निर्मूढता गुण पहिचाने।। 2।।
परको औगुण देख जु ढाके, सो उपगूहन श्रीजिन भाखे।
जैन धर्म तें डिगता देखे, थापे बहुरि थिति कर लेखे।। 3।।

जिनधर्मी सों प्रीति निवहिये, गऊ बच्छावत् वच्छल कहिये।
ज्यों त्यों जैन उद्योत बढ़ावे, सो प्रभावना अंग कहावे।। 4।।
अष्ट अंग यह पाले जोई, सम्यग्दृष्टि कहिये सोई।।
अब गुण आठ ज्ञान के कहिये, भाखे श्रीजिन मन में गहिये।। 5।।
व्यंजन अक्षर सहित पढ़ीजे व्यंजन व्यजिंत अंग कहीजे।
अर्थ सहित शुध शब्द उचारे, दूजा अर्थ समग्रह धारे।। 6।।
तदुभय तीजा अंग लखीजे, अक्षर अर्थ सहित जु पढ़ीजे।
चौथा कालाध्ययन विचारै काल समय लखि सुमरण धारे। 7।।
पंचम अंग उपधान बतावै, पाठ सहित तब बहु फल पावे।
षष्टम विनय सुलब्धि सुनीजै, वानी विनय युक्त पढ़लीजे।। 8।।
आपै पढ़े न लौपै जाई, सप्तमअंग गुरुवाद कहाई।
गुरुकीबहुतविनयजु करीजे, सो अष्टम अंग धर सुख लीजे।। 9।।
यह आठों अंग ज्ञान बढ़ावें, ज्ञाता मन वच तन कर ध्यावें।
अब आगे चारित्र सुनीजे, तेरह विध धर शिव सुख लीजे।। 10।।
छहों कायकी रक्षा कर है, सोई अहिंसाव्रत चित धर है।
हितमितसत्य वचन मुख कहिये सो सतवादी केवल लहिये।। 11।।
मन वच काय न चोरी करिये, सोई अचौर्यव्रत चित धरिये।
मन्मथ भय मन रंच न आने, सो मुनि ब्रह्मचर्य व्रत ठाने।। 12।।
परिग्रह देख न मूर्छित होई पंच महाव्रत धारक सोई।
ये पांचों महाव्रत सुखरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं।। 13।।
मनमे विकलप रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई।
वचन अलीक रंच नहिं भाखें, वचनगुप्तिसो मुनिवर राखें।। 14।।
कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि कायगुप्ति जिन कहि हैं।
पंच समिति अब सुनिए भाई, अर्थ सहित भाषे जिनराई।। 15।।
हाथ चार जब भूमि निहारे, तब मुनि ईर्य्या मग पद धारे।
मिष्ट वचन मुख बोलें सोई, भाषा समिति तास मुनि होई।। 16।।
भोजन छयालिस दूषण टारे, सो मुनि एषण शुद्धि विचारे।
देखके पोथी ले अरु धरि हैं, सो आदान निक्षेपन वरि हैं।। 17।।
मल मूत्र एकान्त जु डारें, परतिष्टापन समिति संभारे।
यह सब अंग उनीतस कहे हैं, श्रीजिन भाखे गणेश गहे हैं।। 18।।
आठ आठ तेरह विध जानों, दर्शन ज्ञान चारित्र सुठानो।

तातें शिवपुर पहुंचो जाई, रत्नत्रय की यह विधि भाई।। 19।।
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई।
चैत माघ भादों त्रय वारा, क्षमा क्षमा हम उरमें धारा।। 20।।
दोहा— यह क्षमावाणी आरती, पढ़े सुने जो कोय।
कहे 'मल्ल' सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय।।
ओ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शन, अष्टांग, सम्यग्ज्ञान, त्रयोदशविध सम्यकचारित्रेभ्यो महार्घम् निर्वपा०।।
सोरठा—दोष न गहिये कोय, गुण गण गहिये भावसों।
भूल चूक जो होय, अर्थ विचारि जु शोधिये।।
इत्याशीर्वाद·

— — — — —

स्वयंभू स्तोत्र भाषा

राजविषे जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिव पद लियो।
स्वयं बोध स्वयंभू भगवान, वन्दौ आदिनाथ गुणखान।। 1।।
इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरु न्हावये गाय बजाय।
मदन-विनाशक सुख करतार, वन्दौं अजित-अजित पदकार।। 2।।
शुकलध्यान करि करम विनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुक्तिपद सुख अधिकार, वन्दौं सम्भव भव· दुःखटार।। 3।।
माता पच्छिम रयन मंझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दौ अभिनन्दन मनलाय।। 4।।
सब कुवाद वादी सरदार, जीते स्यादवाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वामी, सुमतिदेव-पद करहुं प्रणाम।। 5।।
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमो पदम प्रभु सुखकी रास।। 6।।
इन्द्र फनिन्द्र नरिन्द्र त्रिकाल, बानी सुनि-सुनि होहिं खुशाल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमों सुपारसनाथ निहार।। 7।।
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमों चन्द्रप्रभ राख समीप।। 8।।
द्वादश विधि तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, वन्दौं पुहुपदन्त मन आन।। 9।।
भवि-सुखदाय, सुरगतैं आय, दश विधि धरम कह्यो जिनराय।

आप समान सबनि सुखदेह, वन्दौं शीतल धर्म-स्नेह।। 10।।
समता-सुधा कोप-विष-नाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चार संघ-आनन्द-दातार, नमौं श्रेयांस जिनेश्वर सार।। 11।।
रतनत्रय शिर मकुट विशाल, शोभै कण्ठ सुगुण मणिमाल।
मुक्ति-नार-भरता भगवान, वासुपूज्य वन्दौ धर ध्यान।। 12।।
परम समाधि स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त वन्दौ विमलनाथ भगवन्त।। 13।।
अन्तर बाहिर परिग्रह डारि, परम दिगम्बर-व्रतको धारि।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमो अनन्त वचन मन लाय।। 14।।
सात तत्व पचासतिकाय, अरथ नवो छ दरब बहु भाय।
लोक अलोक सकल परकाश, वन्दौ धर्मनाथ अविनाश।। 15।।
पचम चक्रवर्ति निधिभोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शन्तिनाथ वन्दौ हरषाय।। 16।।
बहु थुति करे हरष नहि होय, निन्दे दोष गहै नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप।। 17।।
द्वादशगण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय।
जाकीनिजथुति कबहु न होय, वन्दौं अर-जिनवर-पद दोय।। 18।।
पर-भव रतनत्रय-अनुराग, इह-भव ब्याह-समय वैराग।
बाल-ब्रह्म-पूरन-व्रतधार, वन्दौं मल्लिनाथ जिनसार।। 19।।
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पगलाग।
नम-सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौ मुनिसुव्रत व्रत देहि।। 20।।
श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भावसों दियो अहार।
बरसी रतन-राशि तत्काल, वन्दौ नमिप्रभु दीन-दयाल।। 21।।
सब जीवन की बन्दी छोर, गग-द्वेष द्वै बन्धन तोर।
रजमति तजि शिव-तियसों मिले, नेमिनाथ वन्दौं सुख मिले।। 22।।
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुखकर श्याम, नमों मेरुसम पारसस्वामी।। 23।।
भव सागरतैं जीव अपार, धरम पोतमें धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान वन्दौ वहुबार।। 24।।

दोहा

चौबीसों पद कमल-जुग बन्दौं मन वच काय।
'द्यानत' पढ़े सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय।।

--

अर्घावली

तीस चौबीसी

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ करमें नवीना है।
पूजते पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है।।
दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दश ता विषैं छाजै।
सात शत बीस जिन राजैं, पूजताँ पाप सब भाजै।।

ॐ ह्रीं पाच भरत पाच ऐरावत तत सम्बन्धी तीस चौबीसी के सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण

जल फल आठों द्रव्य चढाय, 'द्यानत' वरत करो मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि षोडश-कारणेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरू

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महा सुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पांचो मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमाजी को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरु सबन्धि अस्सी जिन चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अर्घम्।

नन्दीश्वरदीप

यह अरघ कियो निज हेतु, तूमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव खेत भूमि समरपतु हो।।
नन्दीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुञ्ज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम आनन्दभाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणद्विपचाश जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्म

आठों दरब संवार द्यानत अधिक उछाह सों।
भवआताप निवार, दशलक्षण पूजो सदा।।

ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्मेभ्योअर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिए।
जन्म रोग निरवार, सम्यक्रतनत्रय भजूं।।

ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय, अष्टविधसम्यक्ज्ञानाय, त्रयोदशप्रकारसम्यक् चारित्रायऽर्घ्यम्।

सप्तऋषि

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरूवर, दीप धूप सुलावना।
फल ललित आठो द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजै पावना।।
मन्वादि चारण ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूं।।

ॐ ह्रीं मन्वादि चारणाऋद्धिधारी सप्तऋषिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र

जल गन्ध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निर्भय जगत सों, जोरकर विनती करौं।।
सम्मेदगढ गिरनार चम्पा, पावापुर कैलाश कों।
पूजौ सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों।।

ॐ ह्रीं चौबीस तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

महार्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिवहेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दश विधि दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडशरतनत्रय जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूं।
पञ्चमेरुनंदीश्वर जिनालय खचर सुरि पूजित भजूं।।
कैलाश श्री सम्मेद गिरि गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजों बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय होय पति शिव गेह के।।
दोहा:-जल गंधाक्षत पुष्पचरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हन्तजी, सिद्धजी आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, द्वादशाग जिनवाणी, दशलाक्षणिक धर्म, सोलहकारण भावना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक चारित्ररत्नत्रय, तीनलोकसम्बन्धि कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, पञ्चमेरु सबन्धी अस्सी चैत्यालय, नदीश्वर द्वीप सम्बन्धी बावन जिन चैत्यालय, श्रीसम्मेदशिखर, कैलाशगिरि, गिरनार, चपापुर, पावांपुर आदि सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, विद्यमान बीस तीर्थङ्कर, भगवान के एक हजार आठ नाम, श्री वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशतितीर्थङ्करेभ्यो जलाअर्घ महाअर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ भाषा

शांति नाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणा व्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजै, निरखत नयन कमल दल लाजैं।।
पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थङ्कर सुखकारी।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमों शांतिहित शांति विधायक।।
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी।।

शांति जिनेश शांति सुखदाई जगत पूज्य पूजौं शिरनाई।
परम शांति दीजे हम सबको, पढै जिन्हे पुनि चार संघ को।।

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शांति सदा अनूप।।

संपूजको को, प्रतिपालकों को यतीन को ओ यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजै सुखी हे जिनशातिं को दे।।
होवै सारी प्रजा को, सुख, बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समैं पैं, तिल भर न रहै, व्याधियों का अंदेशा।।
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरषै, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारे, जिनवर वृषको, जो सदा सौख्याकारी।।
घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवल-राज।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।
शास्त्रो का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगति का।
सद्वृतों का सुजश कहके, दोष ढाकूं सभी का।।
बोलूं प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊं।
तौ लौं सेऊं चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊं।।
तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से, दूषित जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुन छुड़ाहु भवदुख से।।
हे जगबन्धु जिनेश्वर पाऊं, तव चरण शरण बलिहारी।
मरण-समाधि-सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

विसर्जन

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय।।
पूजन विधि जानू नहिं, नहिं जानू आह्वान।
और विसर्जन हूं नही, क्षमा करो भगवान।।
मंत्रहीन धनहीन हूं, क्रियाहीन जिनदेव।

क्षमा करहु राखहु मुझे चरण शरण की सेव।।
तुम चरणन ढिंग आयके, मैं पूजौं अतिचाव।
आवागमन रहित करो, रमूँ सदा निजभाव।।

विसर्जनम् (संस्कृत)

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वतप्रसादाजिनेश्वर।।
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर।
मन्त्र-हीनं क्रिया हीनं द्रव्य हीनं तथैव च।
तत्सर्व क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर।।
मंगल भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

स्तुति पाठ

मैं तुम चरण कमल गुणगाय, बहुविधि भक्ति करी मनलाय।
जनम-जनम प्रभु पाऊं तोहि, यह सेवाफल दीजे मोहि।।
कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय।
बार-बार मैं विनती करूं, तुम सेवा भवसागर तरू।।
नाम लेत सब दुख मिट जाय, तुम दर्शन देख्या प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव मैं तो करूं चरण तव सेव।।
मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊं शीश, मुझ अपराध क्षमहु [illegible]दीश।।
सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की विनती, सुन लीज्यो भगवान।।
पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान।।
जैसी महिमा तुम विषै, और धरे नहिं कोय।
जो सूरज में जोति है, तारण में नहिं होय।।
नाथ तिहारे नाम तैं, अघ छिन माहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाश तैं, अंधकार बिनसाय।।
बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभू बहुत अजान।
पूजाविधि जानूँ, नहीं शरण राखि भगवान।।

बारहभावना

(श्री मगतराय जी कृत)

दोहा छंद

वदू श्री अरहतपद, वीतराग विज्ञान।
वरणू बारह भावना, जगजीवन-हित जान।। 1।।

विष्णुपद छद

कहा गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहा गये वह राम-रू-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहा कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहा गये वह रगमहल अरू, सुवरनकी नगरी।। 2।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव जूझ मरे रनमें।
गये राज तज पाडव वनको, अगिन लगी तनमें।।
मोह-नींदसे उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु बारह भावन को।। 3।।

1 अथिर भावना

सूरज चाद छिपै निकलै, ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयू ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहीं हटता।।
स्वास चलत यो घटे काठ ज्यो, आरे सों काटता।। 4।।
ओस बूद ज्यो गलै धूप मे, वा अजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी।।
इद्रजाल आकाश नगर सम, जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।। 5।।

2 अशरण भावना

काल-सिहने मृग-चेतनको, घेरा भव वनमैं।
नहीं बचावन-हारा कोई, यो समझो मनमैं।।
मत्र यत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटै।
वश नहि चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे।। 6।।
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आय

एक तीरके लगत कृष्णकी विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगतमें, और नहीं कोई।
भ्रमसे फिरै भटकता चेतन, युंही उमर खोई।। 7।।

3 संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोगसे, सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता।।
छेदन भेदन नरक पशुगति, बध बंधन सहना।
राग-उदयसे दुख सुरगतिमें, कहां सुखी रहना।। 8।।
भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरू जाली।।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पचमगति सुख मिलै शुभाशुभको मेटो लेखा।। 9।।

4 एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुखका भोगी।
और किसीका क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी।।
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुखको रोवैं, पिता पुत्र दारा।। 10।।
ज्यो मेलेमें पंथीजन मिल, नेह फिरैं धरते।
ज्यो तरवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते।।
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक थक हारै।
जाय अकेला हस संगमें, कोई न पर मारै।। 11।।

5 भिन्न भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रममें उठ उठ, दौडैं थक थककै।।
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।। 12।।
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतनतैं बिछुडै, ज्यों पय अरु पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यमसों चरना।। 13।।

6 अशुचि भावना

तू नित पौखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्योंमैली।
निश दिन करै उपाय देहका, रोग-दशा फैली।।

मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
।माम हाड नश लहू राधकी, प्रगट व्याधि घेरी।। 14।।
काना पौडा पडा हाथ, यह चूसै तो रोवै।
फलै अनत जु धर्म ध्यानकी, भूमि-विषै बोवै।।
केमर चदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।
देह परमते होय अपावन, निशदिन मल जारी।। 15।।

7 आस्रव भावना

ज्यो सर-जल आवत मोरी त्यो, आस्रव कर्मनको।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुदगल-भरमनको।।
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनको।
पाप पुण्य के दोनो करता, कारण बधन को।। 16।।
पन-मिथ्यात योग-पद्रह, द्वादश-अविरत जानो।
पचरू बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह-भाव की ममता टारै, पर परणात खोते।
करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।। 17।।

8 सवर भावना

ज्यो मोरीमे डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यो आस्रवको रोकै सवर, क्योनहि मन लाता।।
पच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मनको।
दशविध-धर्म परीषह-बाइस, बारह भावनको।। 18।।
यह सब भाव-सतावन मिलकर, आस्रवको खोते।।
सुपन दशा से जागो, चेतन कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्ध-भावन-संवर भावै।
डाट लगत यह नाव पडी, मझधार पार जावै।। 19।।

9 निर्जरा भावना

ज्यो सरवर जल रुका सूखता, तपन पडै भारी।
सवर रोकै कर्म, निर्जरा, है सोखनहारी।।
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली।। 20।।
पहली सबके होय, नहीं कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटै जगत फेरा।।

संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुल्हिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।। 21।।

10 लोकभावना

लोक अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप करी-कटी भये, षट द्रव्यनसों मानों।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरु पुदगल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है।। 22।।
पापपुण्यसों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै, शिर औरन के धरता।।
मोहकर्मको नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो बासा।। 23।।

11 बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक, दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना।। 24।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना।
दुर्लभ मुनिवरके व्रत पालन, शुद्धभाव करना।।
दुर्लभसे दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भवमे आवै।। 25।।

12 धर्म भावना

धर्म-अहिंसा परमो धर्मः ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानो।।
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे।। 26।।
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्वका वर्णन जामें, सबको सुखदानी।।
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर-तरना।। 27।।

बारह-भावना

(कविवर भूधरदास जी कृत)

दोहा

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।। 1।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार।। 2।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहू न सुख संसार मे, सब जग देख्यो छान।। 3।।
आप अकेला अवतरै, मरै अकेलो होय।
यू कबहू इस जीव को, साथी सगा न कोय।। 4।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।।
घर सपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।। 5।।

सोरठा

मोह-नीदके जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहु ओर, सरवस लूटै सुध नहीं।। 6।।
सतगुरु देय जगाय, मोह-नीद जब उपशमै।
तब कछु बनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।। 7।।

दोहा

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शौधै भ्रम छोर।
या विध बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर।। 8।।
पच महाव्रत सचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।। 9।।
चौदह राजु उतग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामे जीव अनादितै, भरमत है बिन ज्ञान।। 10।।
धन कन कचन राजसुख सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है ससार मे, एक जथारथ ज्ञान।। 11।।
जाचे सुरु-तरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन।
बिन जाचै बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन।। 12।।

छहढाला

(अध्यात्मप्रेमी कविवर श्री प दौलतरामजी कृत)

पहली ढाल

तीन-भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव स्वरूप शिवकार, नमहुं त्रियोग-सम्हारिकै।

संसार के दुखों का वर्णन

(चौपाई छन्द)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहै दुखतैं भयवंत।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहै सीख गुरु करुणा धार।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहौ अपनो कल्याण।
मोहमहामद पियौ अनादि, भूलि आप को भरमत वादी।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहू कही मुनि यथा।
काल अनत निगोद मझार, बीत्यौ एकेन्द्री तन धार।
एक स्वास में अठ दस बार, जन्म्यौ मरयौ भरयौ दुखभार।
निकसि भूमि जलपावक भयौ, पवन प्रत्येक वनस्पति थयौ।।
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर, धरधर मरयौ सही बहु-पीर।।
कबहुं पंचेद्रिय पशु भयौ, मन बिन निपट अज्ञानी थयौ।
सिहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।
कबहू आप भयौ बलहीन, सबलनि करि खायौ अति दीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भारवहन हिम-आतप-त्रास।।
वध बंधन आदिक दुख घनैं, कोटि जीभतै जात न भनैं।
अति संक्लेश भावतैं मरयौं, घोर श्वभ्रसागर में परयौ।।
तहां भूमि परसत दुख इसो, बीछू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहा राध-शौणित वाहिनी, कृमिकुल कलित देह दाहिनी।।
सेमर तरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यौ देह विदारैं तत्र।
मेरुसमान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।
तिल-तिल करैं देह के खंड, असुर भिडावैं दुष्ट प्रचंड।
सिंधु नीरतै प्यास न जाय तौ पण एक न बूंद लहाय।।

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै, न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लौं सहैं, करम जोगतैं नरगति लहै।।
जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवै और।।
बालपने मे ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणी रत रह्यौ।।
अर्द्धमृतक सम बूढापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।
कभी अकाम निर्जरा करैं, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह-दावानल दह्यौ मरत विलाप करत दुख सह्यौ।।
जो विमानवासी हूं थाय सम्यगदर्शन बिन दुख पाय।
तहूं तैं चय थावर-तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करै।।

दूसरी ढाल

संसार भ्रमण के कारण

(पद्धडी-छन्द)

ऐसे मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण वश भ्रमत भरत दुख जन्म मर्ण।
तातै इनको तजिये सुजान, सुन जिन संक्षेप कहूं बखान।।
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिन माहि विपर्यत्त्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरति चिनमूरति अनूप।।
पुदगल नभ धर्म अधर्म, काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान।।।
मैं सुखी दुखीमैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय, मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट ये दुख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन।।
शुभअशुभ बधके फल मझार, रति अरति करैं निजपद बिसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपकौं कष्टदान।
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछू, सोक ज्ञान, दुखदायक है अज्ञान जान।।
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह।।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषें चिर-दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह बाहर धन अंबरतैं सनेह।।
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल उपलनाव।
जे राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिन्ह चीन्ह।
ते है कुदेव, तिनकी जु सेव, शठ करत, न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहैं अशर्म।।
याकूं गृहीतमिथ्यात जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।।
एकान्तवाद-दूषित समस्त, विष्यादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।
जो ख्यातिलाभ पुजादि चाहधरि करन विविध विधि देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पंथ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग अब दौलत निज आतम सुपाग।।

तीसरी ढाल

सच्चा सुख, मोक्षमार्ग, सात तत्त्व, सम्यग्दृष्टि की महिमा

(नरेन्द्रछन्द जोगीरासा)

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यौ चहिये।।
सभ्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सौ दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सुनिश्चय, कारण सो व्यवहारो।।
परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सभ्यक्त भला है।।
आप रूपको जानपनों सो, सभ्यक् ज्ञान कला है।।
आप रूप मे लीन रहे थिर, सभ्यक् चारित सोई।
अब व्यवहार मोख-मग सुनिये, हेतु नियत को होई।।
जीव अजीव तत्व अरु आस्रव बंध रूसंवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यो सरधानों।।
है सोई समकित विवहारी, अब इन रूप बखानों।
बहिरातम, अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।

देह जीवको एक गिनै, बहिरातम तत्व मुधा हैं।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुद्ध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी।।
मध्यम अन्तर आतम है जे, देशब्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि तीनो शिवमगचारी।।
सकल निकल परमातम, द्वै विधि तिनमें घाति निवारी।
श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजैं।
चेतनता-बिन सो अजीव है, पच भेद ताके है।।
पुद्‌गल पंच वरन, रस गध दु-फरस बसु जाके हैं।।
जिय पुदगल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।।
तिष्ठत ही यो अधर्म सहाई, जिन वच माहि निरूपी।।
सकल द्रव्य को वास जास मे, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निसदिन सौ, व्यवहारकाल परिमानो।।
यो अजीव अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।
ये ही आतम को दुःख कारण, ताते इनको तजिये।
जीव प्रदेश बधे विधिसौ सो, बधन कबहुँ न सजिये।।
शम दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।।
तपबलतें विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये।
सकलकर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव, थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्वनकी, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
यहु मान समकित को कारण, अष्ट अंग-जुत धारो।।
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शकादिक वसुदोष बिना, संवेगादि चित पागों।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौ, तिन संक्षेपहु कहिये।।
बिन जानेतें, दोष गुनन् को कैसे तजिये गहिये।

जिन वच में शका न धार वृष, भव-सुख वांछा भानैं।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्वकुतत्व पिछानै।।
निज गुण अरु पर औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावै।
कामादि कर वृषतैं चिगते निज परको सु दिढ़ावै।।
धर्मीसौं गौ-बच्छ-प्रीति-सम, कर निज धर्म दिपावै।।
इन गुनतें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै।।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय, न तौ मद ठानै।
मद न रूपकौ, मद न ज्ञानकौ, धन बलकौ मद भानै।।
तपकौ मद न, मद जु प्रभुताकौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मद ठानै।
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशसं उचरै है।
जिन मुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करैं है।
दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सभ्यकदर्श सजै है।
चरित मोहवश, लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही, पै गृह में न रचे ज्यों, जल से भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे मे हेम अमल है।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहि, उपजत सभ्यकधारी।।
तीनलोक तिहुंकाल मांहि, नहिं दर्शनसो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सभ्यकता न लहे सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ सुन चेत सयानें, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै।।

चौथी ढाल

सम्यग्ज्ञान चारित्र के भेद
श्रावक के व्रत, धर्म की दुर्लभता

(दोहा)

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर-अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।

(रोला छन्द)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दूहमे भेद अबाधौ।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई।।
तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन माही।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं।।
अवधिज्ञान, मनपर्जय, दो हैं देश-प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा
सकलद्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान समान न आन जगत् में, सुख को कारण।
इह परमामृत जन्मजरा, मृतु रोग-निवारण।।
कोटिजन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरै जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते।
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतमज्ञान, बिना सुख लेश न पायौ।।
ताते जिनवर कथित तत्व, अभ्यास करीजै।
सशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी।।
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञानकौं कारण, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय, बनाय, भव्य ताको उर आनौ।।

जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जेहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं।।
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान धनधान बुझावै।।
पुण्य पाप फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुदगल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लावो।।
तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो।।
सम्यकज्ञानी होय, बहुरि, दृढ चारित लीजै।
एक देश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजै।।
त्रसहिंसा को त्याग वृथा, थावर न संधारै।।
पर बध कार कठोर निद्य, नहिं वचन उचारै।।
जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिताबिन सकल, नारिसों रहें बिरत्ता।।
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखे।
दशदिशि गमन प्रमान, ठान तसु सीम न नाखै।।
ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू के धनहानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अध बनिज कृषीतैं।।
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधैं।
असि, धनु, हल, हिंसोपकरन नहिं दे जस लाधै।।
राग-द्वेषकरतार, कथा कबहुं न सुनीजै।
औरँहु अनरथदंड, हेतु अघ तिन्है न कीजैं।।
धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये।।
भोग और उपभोग, नियमकर ममत निवारै।।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै।।
बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावे।
मरण समै सन्यास धारि, तसु दोष नशावै।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहं तैं चय नरजनम पाय, मुनि है शिव जावै।।

पांचवीं ढाल

बारह भावना

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बडभागी, भव-भौगनतैं बैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई।।
इम चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जबही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिवसुख ठानैं।।
जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मत्र तंत्र बहु होई मरते न बचावे कोई।।
चहुगति दु ख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, तामे सुख नाहिं लगारा।।
शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी,सब स्वारथ के हैं भीरी।।
जल-पय ज्यो, जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहि भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस बसादितें मैली।
नव द्वार बहे धिनकारी, अस देह करे किम यारी।।
जो योगन की चपलाई, तातैं, व्है आश्रव भाई।
आश्रव दुखकार धनेरे, बुधिवत तिन्हैं निरवेरे।।
जिन पुण्य पाप नहि कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, सवर लहि सुख अवलोके।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।
किनहू न करौ न धरै को षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।
अंतिम ग्रीवकलो की हद, पायो अनंत बिरियां पद।
पर सम्यकज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।
जो भाव मोहते न्यारे दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै।

सो धर्म मुनिनकर धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।

छठी ढाल

मुनि और अरहन्त-सिद्ध का स्वरूप तथा शीघ्र आत्महित करने का उपदेश

(हरिगीता-छन्द)

षटकाय जीव न हननतैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी।।
जिनके न लेश मृषा, न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शील धर, चिद्‌ब्रह्म में नित रमि रहैं।।
अन्तर चतुर्दस भेद बाहर-संग दशधा तें टलैं।
परमाद तजि चौ कर मही लखि, समिति ईर्य्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरै।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं।।
छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावकतनें घर अशन को।
लैं, तप बढ़ावन हेत, नहिं तन पोषते, तजि रसन को।।
शुचि ज्ञान संजम उपकरण, लखिकै गहैं लखिकै धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन, मल-मूत्र-श्लेषम परिहरैं।।
सम्यक् प्रकार निरोध-मन वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।।
रस रूप गंध तथा फरस-अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग-विरोध-पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।
समता सम्हारैं थुति उचारैं, वंदना जिनदेव की।
नित करैं श्रुतरति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अंबर आवरन।
भूमांहि पिछली रयन मे, कछु शयन एकाशन करन।।
इक बार दिनमें लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत, परिषह, सों, लगे निज ध्यान में।
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निंदन थुतिकरन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन।।

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा।।
यों है सकल संयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस हाथ प्रगटै आपनी निधि, मिटे पर की प्रवृत्ति सब।।
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भाव को न्यारा किया।।
निजमाहिं निजके हेतु, निजकर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मझार कछु भेद न रह्यौ।।
जह ध्यान ध्याता ध्येय कौ, न विकल्प, वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां।।
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत, ये तीनधा, एकै लसा।।
परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत, अनुभव में दिखै।।
दृग ज्ञान सुख बल मय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिंड चंड अखंड सगुण-करंड च्युत पुनि कलनितैं।।
यों चिंत्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रकै नाहीं कह्यौ।।
तबही शुक्लध्यानाग्नि करि, चऊ घातिविधि काननदह्यौ
सब लख्यौ केवलज्ञानकरि, भवलोककों शिवमग कह्यौ।
पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू बसै।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसै।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गए।
अविकार अचल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।
निजमाहिं लोक, अलोक गुण, परजाय, प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादी भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया।।
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़ भागि रत्नत्रय धरै।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जगमल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि साहस-ठानि यह सिख आदरौ।

जबलौं न रोग जरा गहै-तब लौं झटिति निज हित करौ।
यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज-पद बेइये।।
कहा रच्यो, पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल! होहू सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै।।

ग्रन्थ निर्माण का समय तथा आधार

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल बैशाख।
कर्यौ तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख।।1।।
लघु धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावौ भव-कूल।।2।।

सामायिक पाठ

महान् आध्यात्मिक विभूति अमितगति आचार्य विरचित
सस्कृत सामायिक पाठ के आधार पर हिन्दी पद्यानुवाद

अनुवादक—श्री युगलजी कोटा

प्रेमभाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।1।।
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।2।।
सुख दुख बैरी बन्धुवर्ग में, कांच कनक में समता हो।
वन उपवन, प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहीं ममता हो।।3।।
जिस सुन्दरतम-पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन-पथ।।4।।
एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूं वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो।।5।।
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे मिट जावें सद्भावों से।।6।।

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शांत।। 7।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया।। 8।।
कभी वासना की सरिता का, गहन-सलिल मुझ पर छाया।
पी पी कर, विषयों की मदिरा, मुझ में पागलपन आया।। 9।।
मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
पर निन्दा गाली चुगली जो, मुंह पर आया, वमन किया।। 10।।
निरभिमान उज्जवल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।। 11।।
मुनि, चक्री, शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
परम वेद पुरान जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।। 12।।
दर्शन ज्ञान — स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे।। 13।।
जो भव दुख का विध्वंसक हैं, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान।। 14।।
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य—दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप।। 15।।
निखिल—विश्व के वशीकरण, वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रय ज्ञान स्वरूपी, परमदेव मम हृदय रहे।। 16।।
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे यह हृदय पवित्र।। 17।।
कर्म-कलंक- अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त।। 18।।
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता दिव्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञान मय स्वपर प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त।। 19।।
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित, शांत, शिव, परमशरण मुझको वह आप्त।। 20।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद-चिन्ता सब, जिसके, परम शरण मुझको वह देव।। 21।।
तृण-चौकी, शिल शैल शिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।

संस्तर, पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।। 22।।
इष्ट-वियोग अनिष्ट योग मे, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विश्व वासना, उपादेय निर्मल आतम।। 23।।
बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमे।। 24।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे है उसके पुरुषार्थ।। 25।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वाभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर हे, कर्माधीन विनाशी है।। 26।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो-सुत तिय मित्रों से कैसे?
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे?।। 27।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष मार्ग का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग।। 28।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालो को छोड़।
निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर, फिर लीन उसी में हो।। 29।।
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते।। 30।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि।। 31।।
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, अमितगति वह देव महान।
शाश्वत निज मे अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।। 32।।

सर्वज्ञ देव कथित छहों द्रव्यों के स्वतन्त्रता दर्शक

सामान्य गुण

1. अस्तित्व गुण

कर्त्ता जगत का मानता, जो कर्म या भगवान को,
वह भूलता हैं लोक में, अस्तित्वगुण के ज्ञान को;
उत्पाद व्ययुत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुण के योग से, कोई नहीं जग में मरे।। 1।।

2. वस्तुत्वगुण

वस्तुत्वगुण के योग से ही, द्रव्य की स्व स्वक्रिया,
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया;
सामान्य और विशेष से, कर रहें निज-निज काम को,
यों मानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को।। 2।।

3. द्रव्यत्वगुण

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को, जग मे पलटता है सदा,
लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण सम्पदा;
स्व-द्रव्य मे मोक्षार्थि हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा,
हो नाश जिससे आजतक की, दुःखदायी भवकथा।। 3।।

4. प्रमेयत्वगुण

सब द्रव्य-गुण प्रमेय से, बनते विषय हैं ज्ञान के,
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से, जानियो यो ध्यान में,
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज, यह ज्ञान उसको जानता,
है स्व-पर सत्ता विश्व में, सदृष्टि उनको जानता।। 4।।

5. अगुरुलघुत्वगुण

यह गुण अगुरुलघु भी सदा, रखता महत्ता है महा,
गुण द्रव्य को पररूप यह, होने न देता है अहा! ;
निज गुण-पर्यय सर्व ही, रहत सतत निजभाव में,
कर्त्ता न हर्त्ता अन्य कोई, यों लखो स्व-स्वभाव में।। 5।।

6. प्रदेशत्वगुण

प्रदेशत्वगुण की शक्ति से, आकार द्रव्यों को धरे,
निज क्षेत्र में व्यापक रहे, आकार भी स्वाधीन है ;
आकार है सब के अलग, हो लीन अपने ज्ञान में,
जानो इन्हें सामान्य गुण, रक्खो सदा श्रद्धान में।। 6।।

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निसपृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी मे लीन रहो।। 1।।
विषयों की आशा नहि जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।। 2।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं।
परधन-वनिता* पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूँ।। 3।।
अहंकार का भाव न रखूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूं।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।। 4।।
मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन—दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग—रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रखूं मैं उन पर, ऐसी परणति हो जावे।। 5।।
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।। 6।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षो तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे।। 7।।

---

* महिलाए वनिता की जगह भर्ता पढ़ें।

होकर सुख में मगन न फूलें, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे।।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे।। 8।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़, जग-नित्य नये मंगल गावे।।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्मफल सब पावे।। 9।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे।। 10।।
फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख सङ्कट सहा करें।। 11।।

प्रेम पीयूष

(बाल ब्रह्मचारिणी कुमारी कौशल जी)

प्रेम पीयूष पिलाओ भगवन, प्रेम पीयूष पिलाओ।
तन मन जीवन तमाच्छन्न है, पावन ज्योति जगाओ ।। टेक।।
प्रेम का पंथ निराला इस पर, प्रभु चलना सिखलाओ।
मैं तू का कुछ भेद नहीं, वह एक ज्योति दिखलाओ ।। 1।।
हे साधु शरण इस अहंकार की, सेना मार भगाओ।
एक तत्व दर्शन से सबका, मन प्रमुदित हो जाओ।। 2।।
गुरु निष्ठा आदर्श प्रेम की, द्युति को अमर बनाओ।
इस तन का कण-कण व्यापक हो, विश्व प्रेम बन जाओ।। 3।।
पंचम परम चरणाम्बुज के प्रति, नित सब शीश झुकाओ।
शरणागत अर्हन्त सिद्ध को, साधु धर्म मन भाओ।। 4।।
क्रोध मान ज्वालाएं दोनों, मिल अमृत बन जाओ।
क्षमा शोच मार्दव आर्जव बन, शीतलता फैलाओ।। 5।।

मैं कौन हूं?

'अमूल्य तत्व विचार'

श्रीमद् रायचन्द्र कृत

अनुवादक युगलजी (कोटा)

एम.ए., साहित्यरत्न

(हरिगीत छंद)

बहु पुण्य-पुंज-प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला,
तो भी अरे! भवचक्र का, फेरा न एक कभी टला।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर-भावमरण,-प्रवाह में चकचूर है।। 1।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये-
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धि? कुछ नहिं मानिये।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुमको अरे! इसका विवेक विचार है।। 2।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहां भी प्राप्त हो,
यह दिव्य अन्तः तत्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो।
'पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया,
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दःख भरा।। 3।।
मैं कौन हूं, आया कहां से, और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूं परिहार क्या?
इसका विचार विवेक पूर्वक शान्त होकर कीजिये,
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धांत का रस पीजिये।। 4।।
किसका वचन उस तत्व की उपलब्धि में शिवभूत है,
निर्दोष नर का वचन रे! बस स्वानुभूति प्रसूत है।
तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये,
सर्वात्म में समदृष्टि द्यो, यह वच हृदय लिख लीजिये।। 5।।

।। चतुर्विंशति स्तव ।।

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णर-पवर-लोय-महिऐ, विहुयरयमले महाप्पण्णे।। 1।।
लोयस्सु-ज्जोययरे, धम्म तिथंकरे, जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।। 2।।
उसहमजियं च वंदे, संभवम-अभिणंदणं, च सुमईंच।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे।। 3।।
सूविहं च पुप्फयतंम, सीयल सेयंस वासुपुज्जंच।
विमल-मणंतँ भयवं, धम्मं संति च वंदामि।। 4।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मलिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि अरिटटणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।। 5।।
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीण जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा में पसीयन्तु।। 6।।
कित्तिय वँदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च में बोहिं।। 7।।
चंदेहिं णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहिय पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।। 8।।

तीर्थंकर एव अनन्त सामान्य केवली जिन भगवन्तों की मैं स्तुति करता हूं, जो कि मनुष्य व देवलोक मे विधूत कर्म मल से रहित होने से महानता को प्राप्त हुए हैं।। 1।। धर्म तीर्थ का लोक में प्रकाशन करने वाले ऐसे तीर्थ रूप जिन भगवान की मैं वन्दना करता हूं। कर्म रूप शत्रुओं को नष्ट करने वाले अरहत और केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों की मै स्तुति करूंगा।।2।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु, सुपार्श और चन्द्रप्रभु जिन की मैं वन्दना करता हू।। 3।। सुबिधि, पुष्पदत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त धर्म, शान्ति, कुन्थु, अरह, मल्लि, मुनिसुब्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर को मैं नमस्कार करता हूं।। 4-5।।

ऐसे मेरे द्वारा स्तुत कर्ममल और जरा-मरण रहित जिन मुझ पर प्रसन्न हों।। 6।। जिनकी महिमा कीर्ति रूप से गाई गई है, ऐसे लोक में उत्तम सिद्ध भगवान मुझे आरोग्य, ज्ञान, समाधि तथा बोधि लाभ दे।। 7।। चन्द्र जैसे निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रभावान, सागर की तरह गम्भीर ऐसे सिद्ध पुरुष मुझे सिद्धि प्रदान करें।। 8।।

।। श्रुत भक्ति ।।

देवी सरस्वती तू, जिन देवकी दुलारी।
स्याद्वाद नाम तेरा, ऋषियों की प्राण प्यारी।।
सुर नर मुनीन्द्र सब ही, तेरी सुकीर्ति गावें।
तुम भक्ति में मगन हो, तो भी न पार पावें।।
इस गाढ़ मोह मद में, हमको नहीं सुहाता।
अपना स्वरूप भी तो, नहिं मातु याद आता।।
ये कर्म-शत्रु जननी, हमको सदा सताते।
गति चार माहिं हमको, नित दुख दे रुलाते।।
तेरी कृपा से माँ कुछ, हम शांति लाभ कर लें।
तुम दत्त ज्ञान बल से, निज पर पिछान करलें।।
हे मात तुम चरण में, हम शीश को झुकावें।
दो भक्तिदान हमको, जबलों न मोक्ष न पावें।।

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतन्त्र निश्चल निश्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम। टेक।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं राग वितान। 1।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमितशक्ति सुख ज्ञाननिधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान। 2।
सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रूष दुख की खान।
निजको निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहि, लेश निदान। 3।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम। 4।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर कृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम। 5।

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी।। टेक।। ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी।। 1।। ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी।
तुव भूलत भव भटकत, सहत-विपति भारी।। 2।। ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी।
परमब्रह्मका दर्शन, चहु गति दुखहारी।। 3।। ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी।। 4।। ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानधन, सहज शांतिचारी।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी।। 5।। ॐ

आत्मधुन

सच्चिदानद हूं, ज्ञानानन्द, दर्शनानन्द हूं, सहजानन्द। टेक।
चेतनामात्र हूं, हूं अखण्ड पिण्ड।
हूं अनन्त शक्ति सत्य, रत्न का करण्ड।। सच्चिदा०। 1।
ध्रुव निरंजन अमल, ज्योति का पुञ्ज।
निर्विकार निराकार, सदानन्दकुञ्ज।। सच्चिदा०। 2।
आप ही में आपसे आप ही निर्द्धंद।
शोक रोग, राग द्वेष, कोई नहीं फन्द।। सच्चिदा०। 3।
पूर्ण में ही, पूर्ण से, पूर्ण का प्रवाह।
पूर्ण था, पूर्ण रहेगा, सदा अथाह।। सच्चिदा०। 4।
ज्ञानमात्र, ज्ञानपूर्ण, ज्ञानमय अभिन्न।
हूं निरग निस्तरंग, ज्योति हूं अखिन्न।। सच्चिदा०। 5।

आत्म-रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं।। टेक।
हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानधन, स्वयं पूर्ण।
हूं सत्य सहज आनन्दधाम, मैं सहजानंद० मैं दर्शन०। 1।
हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं।
परका न प्रवेश न कार्ययहां, मैं सह०, मैं दर्शन०। 2।
आऊं उतरूं रमलूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सह० मैं दर्शन०। 3।

मंगलतंत्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि
मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूप में अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानधन हूं, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं अतः कृतार्थ हूं।
मैं सहज आनन्दमय हूं, मेरे स्वरूप में कष्ट नहीं, अतः स्वयंतृप्त हूं।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे। टेक।
ज्ञानसे, ज्ञान में, ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का, इकदम विलय हो।
भ्रान्ति का नाश हो, शान्ति का वास हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 1।
सर्व गतियों में, रह गति से न्यारे, सर्व भावों में, रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 2।
सिद्धि जिनने भी, अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 3।
देह कर्मादि, सब जग से न्यारे, गुण व पर्यय के भेदों से पारे।
नित्य अन्तःअचल, गुप्तज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 4।
आपका, आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयों में, नित श्रेय तू है।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे। तेरी०। 5।

अयि आत्मन्! ज्ञानामृत आनन्दघनजी

अयि आत्मनृज्ञानामृत, आनन्दघनजी, आनन्दघनजी,
स्वपरभाव पिछान, परिहर पर-शरणम्।।1।।
विश्व व्यवस्थित सत्‌छै, कोई नहीं करैजी, कोई नही करैजी,
द्रव्य नियमसर होय, परिहर पर-शरणम्।।2।।
अपनाया स्व ना हुवै, कोई पर द्रव्यजी, कोई पर-द्रव्यजी,
मिथ्या मोटो पाप, परिहर पर-शरणम्।।3।।
होना है सो होय, सी, कुछ नहीं चलैजी, कुछ नहीं चलैजी,
यह निश्चय दृढ़ जान, परिहर पर-शरणम्।।4।।
ज्ञान ही नित अरिहंत छै, चेतन सिद्धजी, चेतन सिद्धजी,
शुद्ध उपयोग सुझाव, परिहर पर शरणम्।।5।।

ज्ञान स्वयं महावीर है

ज्ञान स्वयं महावीर है, आत्म सुदर्शन धार।
चिदानन्दघन आप है, अपनी ओर निहार।।1।।
विश्वमर्यादा अटल है, नहीं कोई पलटनहार।
ज्ञाता बन बन सुखी थया, आपा समझनहार।।2।।
ना कोई पर का कर सके, ना पर से कोई होय।
स्वयं किए बिन ना रहे, विश्व नियम यह जोय।।3।।
अपना सब कुछ आप में, पर का सब पर मांय।
देख पराई परिणती, मत उसमें लपटाय।।4।।
शरणार्थी पर-लक्ष है करे राग उपयोग।
पुरुषार्थी स्व-लक्ष है, करे ज्ञान उपयोग।।5।।
खुद तो निमित्त बनावता, पर से सम्बन्ध रचाय।
दोष निमित्त का मानता, कुछ भी सूझे नांय।।6।।
नदी नीर वत अज्ञ धन, हर कोई हर लेत।
कूप नीरवत् विज्ञधन, गुण बिन बूंद न देत।।7।।
शन्ति निज कर्तव्य है, लक्ष रखो निज मांय।
बाहिर अपना क्या धरा, अपना अपने मांय।।8।।
समझ स्वयं बैरन बनी, पर ही पर दरकार।
समझ स्वयं सम्यक् बनी, कर आतम-सत्कार।।9।।

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाउं।
देहान्त के समय में, निज आत्मा ही ध्याउं।। 1।।
करके क्षमा सभी को, सबसे क्षमा कराऊं।
निश्चय क्षमा ग्रहण कर, निज आत्मा को ध्याऊं।। 2।।
त्यागूं सकल परिग्रह, मिथ्यात्व और कषाय।
समता का भाव धरकर निज आत्मा ही ध्याऊं।। 3।।
हो यदि विकल्प तो मैं, परमेष्ठी पांचों ध्याऊं।
फिर निर्विकल्प होकर, निज आत्मा ही ध्याऊँ।। 4।।
वैराग्य-ज्ञान की तब, अनुपम कला जगी हो।
जड़ देह, कर्म मुक्त, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 5।।
जीने की हो न इच्छा, मरने की हो न वांछा।
बस ज्ञाता-दृष्टा रहकर, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 6।।
कर दोष का आलोचन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान।
निर्दोष होय सबविध, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 7।।
चैतन्य मेरा प्राण, चैतन्य मम समाधि।
चिदलीन कर्म मुक्त, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 8।।
हो ज्ञानचेतना बस, चेतूं न कर्म, कर्मफल।
उपसर्ग केवलीवत्, निज आत्मा ही ध्याऊं।। 9।।

श्री जिनेन्द्र स्तुति

तुम्हारी महिमा कही न जाय। नाथ की महिमा कही न जाय।।
महिमा कही न जाय, तुम्हारी महिमा कही न जाय।। टेक।।
जिन के दर्शन से निज दर्शन, करत चित्त हर्षाय।
जो जिन है सो ही मै चेतन, यह अनुभव उर आय।। तुम्हारी०।। 1।।
स्वसंवेदन ज्ञान कार्य है, नाथ रहे दर्शाय।
ज्ञायकघन की अनुपम शान्ति, भोग यही मन भाय।। तुम्हारी०।। 2।।
पुण्य-पाप सबही विभाव हैं, अनुभव आत्म स्वभाव।
बलिहारी ध्रुव ज्ञायकघन की, जिन ध्रुव कीने निज भाव।। तुम्हारी०।। 3।।
चेतन मम सर्वस्व है, नाथ दिखायो मोय।
आत्म तृप्ति, संतुष्टि रति मर, बलि-बलि जाउं तोय।। तुम्हारी०।। 4।।

ओम आदिनाथ, भगवान तुम्हे, नमूँ मैं, देवाधिदेव, जगदीश, तुम्हे, नमूँ मैं
त्रैलोक्य, शान्ति कर देव, तुम्हे नमूँ मैं, स्वामिन नमूँ, जिन नमू, भगवन नमूँ मैं
नमूँ आदिनाथ, उजियारो, नमूँ आदिनाथ, उजियारो जी
नमूँ आदिनाथ, उजियारो, नमूँ आदिनाथ, उजियारो
प्रभू, चौड़े दोष हमारा, प्रभू, दीसे दोष हमारा जी
प्रभू, जानू दोष हमारा, प्रभू, मानूं दोष हमारा
प्रभू, सर्व ही दोष हमारा, प्रभु, खमजो दोष हमारा
म्हारा जीवन, निर्मल होवे, म्हारा जीवन, सम्यक होवे
अहो, म्हारा जीवन, उज्जवल होवे, म्हारे दोष, क्षमा प्रभू करजो
हां-हां, म्हारे दोष, क्षमा प्रभू, करजो
नमू सर्व परम आत्मा, सीमंधर महावीर
खमज्यो सर्व ही दोष मम, विनवूँ अंतस धीर
देह क्षता, जेनी दशा, वरते देहातीत
आ प्रभू जी ना चरण मां, हो वन्दन अगणीत
आ प्रभू श्री ना चरण मां, हो वन्दन अगणीत

वन्दना

ज्यति जय नमूं आदि भगवान, जयति जय होवे आदि का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं सुमति भगवान, जयति जय होवे सुमति का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं शीतल भगवान, जयति जय होवे शीतल का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं विमल भगवान, जयति जय होवे विमल का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं धर्म भगवान, जयति जय होवे धर्म का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं शान्ति भगवान, जयति जय होवे शान्ति का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं नेमी भगवान, जयति जय होवे नेम का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं पार्श्व भगवान, जयति जय होवे पार्श्व का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं वीर भगवान, जयति जय होवे वीर का ज्ञान,
ज्यति जय नमूं सिद्ध भगवान, जयति जय होवे सिद्ध का ज्ञान,

प्रभु भक्ति

अरिहंत सिद्ध पद तेरा, भज प्रभु पद सुखद सवेरा,
चेतन भय्या! आनन्द सहज है होना।
आचार्य मुनि पद तेरा, सज निज पद सुखद सवेरा,
चेतन भय्या! आनन्द सहज है होना।
ओम ज्ञान घनम पद तेरा, तज करता पन का घेरा,
चेतन भय्या! आनन्द सहज है होना।
उपयोग जीवन है तेरा, तज जड़ पुदगल का डेरा,
चेतन भय्या! आनन्द सहज है होना।

भक्ति पद

मैं ज्ञानानन्द........
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूं, मैं ज्ञानान्द स्वभावी हूँ ।
मैं हूं अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गध नही।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी संबंध नहीं।
मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से भी, मैं भिन्न निराला हूं।
मैं हूं अखंड चैतन्य पिंड, निज रस में रमने वाला हूं।।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्ता, मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूं, पर में मेरा विश्राम नहीं।
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध एक, पर परिणति से अप्रभावी हूं।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूं।।

ज्ञान सूर्य उद्योत है

(1)

ज्ञान-सूर्य उद्योत है, सम्यक सुप्रभात।
चेतो कृतकृत्य आतमा, चिदानन्द साक्षात्।।

(2)

जग परिणाति नियमित सदा, फेर सके नहीं कोय।
निज ज्ञप्ति के जोर से, निश्चय अरिहन्त होय।।

(3)

ज्ञायकमय निजरूप हैं, स्पर्शमय जड़ रूप।
मान स्पर्शमय दुःखी बन्या, ज्ञायक आनन्द रूप।।

(4)

सद्विवेक जब होत है, नष्ट होत है पाप।
चेते स्वयम् आत्मा, सम्भले आपो आप।।

सम्यक् राह

शान्ति समर में ज्ञान राग बिच,
भेद विज्ञान प्रथम होगा।
ज्ञान सूर्य का आये राग से,
ज्ञेय सम्बन्ध रखना होगा।।
आत्म द्रव्य के लक्ष मात्र से,
रत्नत्रय धारना होगा।
होगी निश्चय पूर्ण शान्ति यह,
भाव सदा भरना होगा।।

द्रव्य बना है, भाव बना है!

द्रव्य बना है, भाव बना है, होना भी साथ बना है।
बने बनाये, जड़ चेतन में ।2।
अन्य क्या करने जावे जी, ज्ञानेश्वर! अन्य क्या करने जावे।।1।।
इच्छा माफिक, विश्व करण की, ।2।
बेहद हाय मचावे। जी ज्ञानेश्वर! बेहद हाय मचावे।
कौन सुणे झूठे क्रंदन को, ।2।
व्यर्थ ही धूम मचावे जी, ज्ञानेश्वर! व्यर्थ ही धूम मचावे।।2।।
बड़पन मदरी लाय लगी है, ।2।
उलटी तो रीति सुहावे। जी ज्ञानेश्वर! उल्टी तो रीति सुहावे
सुखद रीति तो विषवत लागे, ।2।
दुःख ही दुःख उपजावे जी, ज्ञानेश्वर! दुःख ही दुःख उपजावे।।3।।

मन से गुप्त, वचन से गुप्त, ।2।
काया से गुप्त ही पावे। जी ज्ञानेश्वर! काया से गुप्त ही पावे।
गुप्त गुफा में आय विराजे, ।2।
निर्भय आनन्द पावे जी, ज्ञानेश्वर! निर्भय आनन्द पावे।।4।।

जिनेन्द्र भक्ति

(1)

दरबार तुम्हारे आए हैं।।2।। टेक।।
दरबार तुम्हारा मनहर है, प्रभु दर्शन कर हर्षाये हैं।। टेक।।
भक्ति करेंगे चित से तुम्हारी, तृप्ति भी होगी चाह हमारी।
भाव रहे नित उत्तम ऐसे, घट के पट में लाये हैं।। 1।। टेक।।
जिसने चिंतन किया तुम्हारा, मिला उसे संतोष सहारा।
शरणे जो भी आये हैं, निज आतम को लख पाये हैं।। 2।। टेक।।
विनय यही है प्रभु हमारी आतम की महके फुलवारी।
अनुगामी हो तुम पद पावन "वृद्धि" चरण सिरनाये हैं।।3।। टेक।।

(2)

मेरे मन मन्दिर में आन पधारो महावीर भगवान।। टेक।।
भगवन तुम आनंद सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर।
निशिदिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान।। 1।।
सुन किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते।
गाते सब तेरा यश गान, पधारो महावीर भगवान।।2।।
जो तेरी शरनागत आया, तूने उसको पार लगाया।
तुम हो दया निधि भगवान, पधारो महावीर भगवान।।3।।
भक्त जनों के कष्ट निवारे, आप तिरे हमको भी तारे।
कीजे हम को आप समान, पधारो महावीर भगवान।।4।।
आये हैं हम शरणा तिहारी, पूजा हो स्वीकार हमारी।
तुम हो करुणा दया निधान, पधारो महावीर भगवान।।5।।
रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू मण्डल तुमसे उजियारा।
रवि-शशि तुम से ज्योतिर्मान, पधारो महावीर भगवान ।।6।।

(3)

प्रभु हम सब का एक, तू ही है तारण हारा रे 2
प्रभु हम सब का एक।। टेक।।
तुम को भूला, फिरा वही नर, मारा मारा रे।। टेक।।
बड़ा पुण्य अवसर यह आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया।
फूला मन यह हुआ सफल, मेरा, जीवन सारा रे।। 1।। टेक।।
भक्ति [illegible] चित्त लगाया, चेतन मे तब चित ललचाया।
वीतरा[illegible]देव करो अब भव से पारा रे।। 2।। टेक।।
अब तो मेरी ओर निहारो, भव समुद्र से नाथ उबारो।
पंकज का लो हाथ पकड़, मैं पाऊं किनारा रे।। 3।। टेक।।
जीवन मे मैं नाथ को पाउं, वीतरागी भाव बढाउ।
भक्ति भाव से प्रभु चरण में जाउं जाउं रे।। 4। टेक।।

(4)

धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है।
वीर का दरबार लगा वीर का दरबार है।। टेक।।
खुशिया अपार आज, हर दिल मे छाई हैं
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है
चारो और देख लो, भीड बेशुमार है।। 1।। टेक।।
भक्ति से नृत्य गान, कोई हैं कर रहे
आतम सुबोध कर, पापों से डर रहे
पल पल पुण्य का, भरे भन्डार है।। 2।।
जय जय के नाद से, गूजा आकाश है
छूटेगे पाप सब, निश्चय यह आज है
देख लो "सौभाग्य" खुला, आज मुक्तिद्वार है।। 3।।

आत्मसिद्धि शास्त्र

हिन्दी अनुवाद

(मूलकर्ता श्रीमद् रायचन्द)

जो स्वरूप समझे विना, पायो दुःख अनंत।
समझाया उन पद नमूं, श्री सद्गुरु भगवत। 1।
वर्तमान इस काल मे, मोक्ष मार्ग बहु लोप।
विचार हित आत्मार्थि को, कहता हूं जो अगोप। 2।
कोई क्रिया-जड हो रहा, शुष्क ज्ञान मे कोय।
माने मारग मोक्ष का, करुणा उपजे जोय। 3।
बाह्य क्रियारत हो रहे, अन्तर भेद न कुछ।
ज्ञान-मार्ग निषेधते, वह क्रिया-जड तुच्छ। 4।
बंध-मोक्ष है कल्पना, वाणी माहि बखान।
वर्त्ते मोहावेश में, शुष्क ज्ञानी पहचान। 5।
वैराग्यादि सफल तो, जो सह आतम ज्ञान।
त्यो ही आतमज्ञान की, प्राप्ती हेतु-निदान। 6।
त्याग विराग न चित्त मे, होय न उसको ज्ञान।
अटके त्याग-विराग मे, वो भूले निज भान। 7।
जहा जहा जो योग्य है वहा समझले तेह।
वहा वहां वह आचरे, आत्मार्थि जनएह। 8।
सेवे सद्गुरु चरण को, त्याग करे निज पक्ष।
पावे वह परमार्थ को, निज पद का लहि लक्ष। 9।
आत्म ज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग।
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्गुरु लक्षण योग। 10।
प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार।
ऐसा लक्ष हुए बिना, उगे न आत्म विचार। 11।
सद्गुरु के उपदेश बिन, नहि समझे जिन रूप।
समझे बिन उपकार क्या, समझे जिन स्वरूप। 12।
आत्मादि अस्तित्व के, जो हैं निरूपक शास्त्र।
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहीं, वहां आधार सुपात्र। 13।
अथवा सद्गुरु ने कहे, जो अवगाहन काज।

वह वह नित्य विचारिये, करके मतान्तर त्याग। 14।
छोडे जीव स्वच्छदता, तो पाये वह मोक्ष।
इस विध हुए अनत जन, कहते जिन निर्दोष। 15।
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग मे, यह स्वच्छंद नहि होय।
करे जो अन्यउपाय तो, प्राय दुगुनो होय। 16।
स्वच्छद मत-आग्रह तजी, वर्त्ते सद्गुरु लक्ष।
समकित उसको भाखते, कारण जानि प्रत्यक्ष। 17।
मानादिक शत्रू महा, स्वच्छद से नहि जाय।
जाते सद्गुरु चरण मे, अल्प जतन से जाय। 18।
जिस सद्गुरु उपदेश से, पाया केवल ज्ञान।
साध गुरु भी वदते, जिसको केवल ज्ञान। 19।
ऐसा मारग विनय का, कहते श्री वीतराग।
मूल हेतु इस मार्ग का, समझे कोई सुभाग। 20।
असद्गुरु इस विनय का, लाभ लहे जो कोय।
महा मोहनीय कर्मवश, डूबे भव-जल मोय। 21।
होय मुमुक्षु जीव जो, समझे वह सुविचार।
होय मतार्थी जीव तो, उलटा ले निर्धार। 22।
होय मतार्थी जीव तो, हो नहीं आतम लक्ष।
उस मतार्थी जीव को, लक्षण कहे नि·पक्ष। 23।

मतार्थी लक्षण

बाह्य-त्याग, पर ज्ञान नहिं, वह माने गुरु सत्य।
अथवा निज-कुल धर्म के, उस गुरु मे ही ममत्व। 24।
जो जिन देह प्रमाणऔ, समवसरणादि सिद्धि।
वर्णन समझ जिनेन्द्र का, रोक रहे निज बुद्धि। 25।
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग में, वर्ते दृष्टि विमुख।
असद्गुरु को दृढ़ करे, निज मानार्थ ही मुख्य। 26।
देवादिक गति भंग में, जो समझे श्रुतज्ञान।
माने निज मत वेश मे, आग्रह मुक्ति-निदान। 27।
लिया स्वरूप न वृत्ति का, किया व्रत अभिमान।

लहे नहीं परमार्थ को, लेने लौकिक मान। 28।
अथवा निश्चयनय ग्रहे, मात्र शब्द के माहि।
लोपे सद् व्यवहार को, साधन रहित रहाहि। 29।
ज्ञानदशा पायी नहीं, साधकदशा न कोय।
जो सगति उनकी लहे, भवमे डूबे सोय। 30।
ऐसे जीव मतार्थ में, निज मानादिक अर्थ।
पाये नहि परमार्थ को, बन अधिकारी व्यर्थ। 31।
नहि कषाय उपशान्तता, नहि अन्तर वैराग्य।
सरलपना न मध्यस्थता, वह मतार्थि दुर्भाग्य। 32।
लक्षण कहे मतार्थि के, मतार्थ तजने हेतु।
चिन्ह कहत आत्मार्थी के, आत्म अर्थ सुख हेतु। 33।

आत्मार्थी लक्षण

आत्म ज्ञान वहा मुनिपना, वह सच्चा गुरु होय।
बाकी कुल गुरु कल्पना, आत्मार्थी नहि होय। 34।
प्रत्यक्ष सद्गुरु प्राप्ति का, गिने परम उपकार।
तीनो योग एकत्व से, वर्ते आज्ञा धार। 35।
एक होय त्रयकाल मे, परमारथ का पथ।
प्रेरे जो परमार्थ को, वह व्यवहार समत। 36।
यों विचार अंतरंग मे, खोजे सद्गुरु योग।
काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन रोग। 37।
कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भव-भीरू-प्राणीदया, वह आत्मार्थ निवास। 38।
दशा न ऐसी जहां तक, जीव लहे नहि योग।
मोक्ष-मार्ग पाये नहीं, मिटे न अन्तर रोग। 39।
आवे जब ऐसी दशा, सद्गुरु-बोध सुहाय।
बोध विचारत जीव को, आत्मिक सुख प्रगटाय। 40।
जब प्रगटे सुविचारणा, तब प्रगटे निज ज्ञान।
उस सुज्ञानसे मोह-क्षय, पावे पद निर्वाण। 41।
उपजे वह सुविचारणा, मोक्ष मार्ग समझांहि।
गुरु-शिष्य संवाद से, कहूं षट्-पदी मांहि। 42।

छः पद के नाम

आत्मा है वह नित्य है, है कर्त्ता निज कर्म।
है भोक्ता अरु मोक्ष है, मोक्ष उपाय सुधर्म। 43।
षट् स्थानक सक्षेप में, षट् दर्शन भी तेह।
समझाने परमार्थ को, कहा ज्ञानि ने वेह। 44।

(1) शंका

दृष्टि मे आवे नहीं, नहीं भासे कुछ रूप।
अन्य कोई अनुभव नहीं, अतः न जीव स्वरूप। 45।
या शरीर ही आत्मा, अथवा इन्द्रिय प्राण।
मिथ्या ह भिन्न मानना, दिखे न प्रथक निशान। 46।
यदि यथार्थ हो आतमा, जाना क्यों नहि जाय।
यदि जाना वह जाय तो, घट-पट वत् दिखलाय। 47।
अत· नही है आत्मा, मिथ्या मोक्ष उपाय।
अतरंग शका हुई, समझा ओ सदुपाय। 48।

(1) समाधान सद्गुरु

दिखे देहाध्यास से, आत्मा देह समान।
पर वे दोनो भिन्न हैं, लक्षण से हो भान। 49।
दीखे देहाध्यास से आत्मा देह समान।
पर वे दोनो भिन्न हैं, जैसे असि और म्यान। 50।
जो दृष्टा है दृष्टि का, जो जानत है रूप।
अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीव स्वरूप। 51।
हे इन्द्रिय प्रत्येक को, निज निज विषय का ज्ञान।
पचेन्द्रिय के विषय का, भी आत्मा को ज्ञान। 52।
देह न उनको जानती, जाने न इन्द्रिय प्राण।
आत्मा के अस्तित्व से, वही प्रवर्त्ते जाण। 53।
सर्व अवस्था में वही, न्यारा सदा जनाय।
प्रगट रूप चैतन्यमय, लक्षण यही सदाय। 54।
घट पटादि तू जानता, उससे उनको मान।
ज्ञायक को जाने न तू, कहिये कैसा ज्ञान। 55।
परम बुद्धि कृश देह मे, स्थूल देह मति अल्प।

देह होय यदि आत्मा, बने न यों विकल्प। 56।
जड़-चेतन का भिन्न है, केवल प्रगट स्वभाव।
एकपना पाये नहीं, तीनों काल द्वय भाव। 57।
आत्मा की शका करे, आत्म स्वय है आप।
शका का करतार वह, अचरज यही अमाप। 58।

(2) शिष्य-शंका

आत्मा के अस्तित्व का, आप कहे अनुसार।
सभव है वह भासता, अन्तर किये विचार। 59।
शंका वहा दूजी हुई, आत्मा नहि अविनाश।
देह-योग से उपजती, देह वियोग से नाश। 60।
अथवा वस्तु क्षणिक है, क्षण-क्षण मे पलटाय।
इस अनुभव से भी नहीं, आत्मा नित्य जनाय। 61।

(2) समाधान-सद्‌गुरु

देह मात्र सयोग है, अरु जड़-रूपी दृश्य।
चेतन की उत्पत्ती लय, किसके अनुभव वश्य? । 62।
जिसके अनुभव वश्य वह, उत्पन्न लय का ज्ञान।
वह उससे प्रथक्त्व बिन, हो न किसी विधिभान। 63।
जो सयोग विलोकिये, वह वह अनुभव दृश्य।
उपजे नहि सयोग से, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष। 64।
जड से चेतन यदि बने, चेतन से जड होय।
ऐसा अनुभव किसी को, कभी कहीं ना होय। 65।
नहीं किसी सयोग से, जिसकी उत्पत्ति होय।
नाश न जिसका किसी मे, इससे नित्य सदाय। 66।
तारतम्य क्रोधादि का, सर्पादिक के मांहि।
पूर्व जन्म सस्कार से, जीव नित्यता वहा हि। 67।
आत्मा द्रव्य से नित्य है, परिवर्तन पर्याय।
बाल आदि वय तीन का, ज्ञान एक को थाय। 68।
अथवा ज्ञान क्षणिक का, जो जाने वदनार।
पर वह वक्ता क्षणिक नहीं, कर अनुभव निर्धार। 69।
कभी किसी भी वस्तु का, केवल होय न नाश।
चेतन पाता नाश तो, किसमें मिले तलाश। 70।

(3) शंका-शिष्य

कर्ता जीव न कर्म का, कर्म हि करता कर्म।
अथवा सहज स्वभाव वा, कर्म जीवका धर्म। 71।
आत्मा सदा असग है, करती प्रकृति बध।
अथवा ईश्वर-प्रेरणा, इससे जीव अबध। 72।
इससे मोक्ष-उपाय का, कोई न हेतु जनाय।
कर्मो का कर्ता पना, कहो? कहां से जाय। 73।

(3) समाधान सद्‌गुरु

होय न चेतन प्रेरणा, कौन ग्रहे तो कर्म।
जड स्वभाव नहि प्रेरणा, देखो-विचारी धर्म। 74।
यदि चेतन कर्ता नहीं, होते नहीं यदि कर्म।
अत· न सहज स्वभाव है, नहीं जीव का धर्म। 75।
केवल होत असग तो, क्यों न तुझे हो भान।
है असग परमार्थ से, पर स्व-बोध से ज्ञान। 76।
कर्ता ईश्वर है नही, ईश्वर शुद्ध स्वभाव।
यदि उसको प्रेरक कहैं, ईश्वर दोष प्रभाव। 77।
चेतन जो निज भान मे, कर्ता आप स्वभाव।
वर्ते नहिं निज भान मे, कर्ता कर्म प्रभाव। 78।

(4) शंका-शिष्य

जीव कर्म कर्ता कहो, पर भोक्ता नहि सोय।
क्या समझे जड कर्म यह, फल परिणामी होय। 79।
फल दाता ईश्वर गिने, भोक्ता पर सध जाय।
ऐसा ईश्वर को कहे, ईश्वर पना नशाय। 80।
ईश्वर सिद्ध हुए बिना, जगत नियम नहीं होय।
पुन· शुभाशुभ कर्म का, भोग्य स्थान नहि कोय। 81।

(4) समाधान-सद्‌गुरु

भाव कर्म निज कल्पना, इससे चेतन रूप।
जीव वीर्य की स्फूरणा, ग्रहण करे जड धूप। 82।
विष अमृत समझे नहीं, जीव खाय फल पाय।
यो शुभाशुभ कर्म का, भोक्ता पना जनाय। 83।

एक रक और एक नृप, इत्यादिक जो भेद।
कारण बिना न कार्य हो, यही शुभाशुभ वेद। 84।
फल दाता प्रभु ईश की, इसमें नहीं जरूर।
कर्म स्वभाव से परिणमें, होत भोग से दूर। 85।
वे वे भोग्य विशेष के, स्थानक द्रव्य स्वभाव।
गहन बात हैं शिष्य यह, कह संक्षेपे साव। 86।

(5) शंका-शिष्य

कर्ता भोक्ता जीव हो, पर नहिं उसको मोक्ष।
बीते काल अनन्त पर, वर्तमान है दोष। 87।
पुण्य करे फल भोगता, देवादिक गति माँहि।
पाप करे नरकादि फल, कर्म रहित कहिं नाहिं। 88।

(5) समाधान-गुरु

यथा शुभाशुभ कर्म पद, जाने सफल प्रमाण।
तथा निवृत्ति-सफलता, इससे मोक्ष सुजान। 89।
बीते काल अनन्त जो, कर्भ शुभाशुभ भाव।
वही शुभाशुभ छेदते, उपजत मोक्ष स्वभाव। 90।
देहादिक सयोग का, आत्यंतिक जु वियोग।
सिद्ध-मोक्ष शाश्वत पदे, निज अनन्त सुख भोग। 91।

(6) शंका

होय कभी जो मोक्ष पद, नहिं अविरोध उपाय।
कर्म जु काल अनन्त के, कैसे छेदे जाय। 92।
अथवा मत-दर्शन बहुत, कहे उपाय अनेक।
उनमे सच मत कौनसा, बने न यही विवेक। 93।
कौन जाति मे मोक्ष है, कौन वेश में मोक्ष।
इसका निश्चय ना बने, अधिक भेद यह दोष। 94।
इससे ऐसा जानिये, मिले न मोक्ष उपाय।
जीवादिक भी जानकर, क्या उपकार दिखाय। 95।
पांचों उत्तर से हुवा, समाधान सर्वांग।
समझू मोक्ष उपाय तो, उदय उदय सद्भाग्य। 96।

(6) समाधान-गुरु

पाचों उत्तर से हुई, आत्मा माहिं प्रतीति।
होगी मोक्ष उपाय की, सहज प्रतीत यह रीति। 97।
कर्म भाव अज्ञान है, मोक्ष भाव निजवास।
अंधकार अज्ञान सम, नाशत ज्ञान-प्रकाश। 98।
जो जो कारण बध के, वही बंध के पंथ।
उन कारण छेदक दशा, मोक्ष-पथ भव-अन्त। 99।
राग द्वेष अज्ञान वह, मुख्य कर्म की ग्रन्थ।
जिससे होय निवृत्ति पन, वही मोक्ष का पन्थ। 100।
आत्मा सत् चैतन्य मय सर्वाभास रहित।
जिससे केवल पाइये, मोक्ष-पंक्ष वह रीत। 101।
कर्म अनंत प्रकार के, उनमें मुख्य हैं आठ।
उनमे मुख्य है मोहनी, हननें का कहू पाठ। 102।
कर्म मोहनी भेद हैं, दर्शन चारित्र दोय।
नाशे बोध विरागता, अचूक उपाय सोय। 103।
कर्म बंध क्रोधादि से, हने क्षमादिक तेह।
प्रत्यक्ष अनुभव सर्व को, इसमें क्या सदेह। 104।
तज हठ मत-दर्शन विषे, आग्रह तथा विकल्प।
कहा मार्ग यदि साधते, जन्म उन्हीं का अल्प। 105।
छह पद के छह प्रश्न जो, पूंछे सहित विचार।
उस पद की सर्वागता, मोक्ष मार्ग निरधार। 106।
जाति भेष निर्ग्रन्थता, आगमोक्त यदि होय।
साधे वह मुक्ति लहे, उसमे भेद न कोय। 107।
कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवहिं खेद अन्तरदया, वह कहिये जिज्ञास। 108।
उस जिज्ञासु जीवको हो, सद्गुरु का बोध।
तो पावे सम्यक्त्व को, वर्ते अंतर शोध। 109।
मत दर्शन का पक्ष तज, वर्ते सद्गुरु लक्ष।
लहे शुद्ध सम्यक्त्व वह, जिसमें भेद न पक्ष। 110।
वर्ते आत्म स्वभाव का, अनुभव लक्ष प्रतीत।

वृत्ति वहे निज भाव में, परमारथ समकीत।111।
वर्धमान सम्यक्त्व हो, त्यागत मिथ्याभास।
उदय होत चारित्र का, वीतराग-पद वास। 112।
केवल आत्म स्वभाव का, अखंड वर्ते ज्ञान।
कहिये केवल ज्ञान वह, देहस्थ भी निर्वाण। 113।
कोटि वर्ष का स्वप्न भी, जागे तुरत विलाय।
तथा विभाव अनादिका, ज्ञान होत मिट जाय। 114।
छूटे देहाध्यास तो, नहिं कर्ता तू कर्म।
भोक्ता तू उसका नहीं, यही धर्म का मर्म। 115।
इसी धर्म से मोक्ष है, तू है मोक्ष स्वरूप।
अनन्त दर्शन-ज्ञान तू, अव्याबाध स्वरूप। 116।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य घन, स्वयं ज्योति सुखधाम।
और कहें हम कहां तक, कर विचार तो पाम। 117।
निश्चय सर्व सुज्ञानिका, आकर यहां समाय।
मौन धार ऐसी कही, सहज समाधि मांय। 118।

शिष्य के बोधबीज की प्राप्ति

सद्गुरु के उपदेश से, हुआ अपूरव भान।
निज पद निज माँहि लिया, दूर हुआ अज्ञान। 119।
भासत आत्म स्वरूप जो, शुद्ध चेतना रूप।
अजर अमर अविनाश औ, देहातीत स्वरूप। 120।
कर्ता भोक्ता कर्म का, वर्ते विभाव माँहि।
वृत्ति वहे निज भाव में, हुआ अकर्त्ता त्यांहि। 121।
अथवा निज परिणाम जो, शुद्ध चेतना रूप।
कर्ता-भोक्ता उसी का, निर्विकल्प स्वरूप। 122।
मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पाता उस पंथ।
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निरग्रंथ। 123।
अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणा सिंधु अपार।
इस पामर पर प्रभु किया, अहो! अहो! उपकार। 124।
क्या प्रभु चरणों में धरम, आत्मा से सब हीन।
वह तो प्रभु ने दे दियो, निवमु चरणाधीन। 125।
यह देहादिक आज से, रहो प्रभु आधीन।
दास दास मैं दास हूं, आप प्रभू का दीन। 126।

षट् स्थानक समझायकर, भिन्न बताया आप।
म्यान मध्य तलवारवत, यह उपकार अभाय। 127।

उपसंहार

दर्शन छहों प्रविष्ट हैं, यह छह स्थानक मांहि।
विचारते विस्तार से, सशय कुछ भी नांहि। 128।
आत्म भ्रान्ति सम रोग नहिं, सद्‌गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहिं, औषध विचार-ध्यान। 129।
जो इच्छुक परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ।
भव-स्थिति आदिक नाम ले, छेदो नहिं आत्मार्थ। 130।
निश्चय वाणी श्रवण कर, साधन त्याग न कोय।
निश्चय रखिये लक्ष मे, साधन करना सोय। 131।
नय निश्चय एकान्त से, इसमें नहिं व्याख्यान।
एकान्ती व्यवहार नहिं, दोनों साथ ही जान। 132।
गच्छ मत की जो कल्पना, वह नहीं सद्‌व्यवहार।
भान नहीं निज रूप का, वह निश्चय नहिं सार। 133।
आगे ज्ञानी हो गये, वर्तमान मे होय।
होगे काल भविष्य मे, मार्ग-भेद नहि कोय। 134।
सर्व जीव है सिद्ध सम, जो समझे वह होय।
सद्‌गुरु आज्ञा जिन दशा, निमित्त कारण होय। 135।
उपादान का नाम ले, वे जो तजे निमित्त।
पावे नहिं सिद्धत्व को, रहे भ्रान्ति में स्थित। 136।
मुखसे कथनी ज्ञान की, अन्तर गया न मोह।
वह पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानी का द्रोह। 137।
दया शान्ति, समता, क्षमा, सत्य त्याग वैराग।
होत मुमुक्षू हृदय में, वही सदैव सुजाग। 138।
मोह भाव क्षय होय जहा, अथवा होय प्रशान्त।
वह कहिये ज्ञानी दशा, बाकी कहिये भ्रान्त। 139।
सकल जगत उच्छिष्टवत्, अथवा स्वप्न समान।
वह कहिये ज्ञानी दशा, बाकी वाचा ज्ञान। 140।
स्थानक पांच विचारकर, छट्ठे वर्ते जेह।
पावत स्थानक पांचवां, नहिं इसमें संदेह। 141।
देही है फिर भी दशा, वर्ते देहातीत।
उस ज्ञानी के चरण मे, हो वंदन अगणीत। 142।

जिनेन्द्र भजनमाला

आध्यात्मिक भजन

(1)

आप में जब तक कि कोई, आपको पाता नहीं।
मोक्ष के मन्दिर तलक, हरगिज कदम जाता नहीं।।टेक।।
वेद या पुराण या कुरान, सब पढ़ लीजिए।
आपके जाने बिना, मुक्ति कभी पाता नहीं।।1।।
हरिण खुशबू के लिए दौड़ा, फिरे जंगल के बीच।
अपनी नाभी में बसे, उसको नजर आता नहीं ।।2।।
भाव-करुणा कीजिए, ये ही धर्म का मूल है।
जो सतावे और को, वह सुख कभी पाता नहीं।।3।।
ज्ञान पै 'न्यामत' तेरे है, मोह का परदा पड़ा।
इसलिए निज आत्मा, तुझको नजर आता नहीं।।4।।

(2)

आतम रूप अनुपम अद्भुत, याहि लखैं भव सिधु तरो। ।टेक।।
अल्पकाल में भरत चक्रधर, निज आतम को ध्याय खरो।
केवल ज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायो लोक शिरो।। 1।।
या बिन समुझे द्रव्य लिंग मुनि, उग्र तपन कर भार भरे।
नवग्रीवक पर्यन्त जाय चिर, फेर भवार्णव माहिं परे।। 2।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये ही जग में सार नरो।
पूरव शिव को गये जाहिं अब, फिर जैहैं यह नियत करो।। 3।।
कोटि ग्रथ को सार यही है, येही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को, मुक्तिरमा तब वेग वरो।। 4।।

(3)

हम तो कबहुँ न निज घर आये।
परघर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराय।। टेक।।
परपद निजपद मानि मगन ह्वै, पर परनति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये।। 1।। टेक।।
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये।। 2।। टेक।।

यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजौ अजहू विषयनको, सतगुरु बचन सुनाये।। 3।। टेक।।

(4)

परिनति सब जीवन की, तीन भांति वरनी।
एक पुण्य, एक पाप, एक राग हरनी॥टेक॥
तामें शुभ, अशुभ अंध, दोय करैं कर्मबंध।
वीतराग परिनति ही, भवसमुद्र तरनी।। 1।। टेक।।
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाहीं मनोग।
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी।। 2।। टेक।।
त्याग शुभ क्रिया कलाप, करो मत कदाच पाप।
शुभ में न मगन होय, शुद्धता विसरनी।। 3।। टेक।।
ऊँच ऊँच दशा धारि, चित प्रमाद को विडारि।
ऊँचली दशातें मति, गिरो अधो धरनी।। 4।। टेक।।
'भागचन्द' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार।
याके निरधार स्याद्- वादकी उचरनी।। 5।। टेक।।

(5)

आपा नहीं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे॥टेक॥
देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिव-मग-चारी रे॥1॥
निज-निवेद बिन घोर परिषह, विफल कही जिन सारी रे॥2॥
शिव चाहे तो द्विविधकर्म तैं, कर निज परनति न्यारी रे॥3॥
'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यौ, तिन भवविपत विदारी रे॥4॥

(6)

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥1॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्या, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥2॥
भव विकट वन मे कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो॥3॥
धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरे भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लख लियो॥4॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरै।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुणयुत, कोटि रवि छवि को हरै॥ 5॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥ 6॥
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु, तारन तरन जी॥ 7॥
जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥ 8॥

(7)

श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता।
तो इस संसार सागर से, तेरा कल्याण हो जाता॥टेक॥
न बढ़ती कर्म बीमारी, न होती जगत में ये ख्वारी।
जमाना पूजता सारा, गले का हार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 1॥
परेशानी न हैरानी, दशा हो जाती मस्तानी।
धर्म का प्याला पी लेता, तो बेड़ा पार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 2॥
रोशनी ज्ञान की खिलती, दिवाली दिल में हो जाती।
हृदय मंदिर में भगवन का, तुझे दीदार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 3॥
ज़मी पर बिस्तरा होता, तो चादर आसमां बनता।
मोक्ष गद्दी पर फिर प्यारे, तेरा घरबार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 4॥
लगाते देवता तेरे, चरण की धूलि, मस्तक पर।
अगर भगवान की भक्ति में, मन तेरा एक तार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 5॥
फक़त जपता अगर माला, प्रभू की एक भक्ती से।
तो तेरा घर भी, भक्तों के लिए, दरबार हो जाता।
श्री जिन देव के चरणों में, तेरा ध्यान हो जाता॥ 6॥

(8)

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहीं चैन पड़ती है।
छबी वैराग तेरी सामने, आंखों के फिरती है॥ टेक॥
निराभूषण विगत दूषण, पद्म आसन मधुर भाषण।
नजर नैनों की नासा की, अनी पर से गुजरती है॥ 1॥
नहीं कर्मों का डर हमको, कि जब लग ध्यान चरणों में।
तेरे दर्शन से सुनते हैं, करम रेखा बदलती है॥ 2॥
मिले गर स्वर्ग की सम्पति, अचम्भा कौन सा इसमें।
तुम्हें जो नयन भर देखे, गती दुर्गति की टरती है॥ 3॥
जगत में मूर्तियां हमने, बहुत सी गौर कर देखीं।
तुम्हारी शान्त मूरत ही, मगर नजरों में चढ़ती है॥ 4॥
जगत सरताज, हो जिन राज, 'न्यामत' को दरश दीजे।
तुम्हारा क्या बिगड़ता है, मेरी बिगड़ी सुधरती है॥ 5॥

(9)

देखोजी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है॥ टेर॥
जगतविभूति भूतिसम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा आसा वासा, नासा दृष्टि सुहाया है॥ 1॥
कंचन वरन, चलै मन रंच न, सुरगिर ज्यों थिर थाया है।
जास पास, अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नशाया है॥ 2॥
शुध उपयोग हुताशन में जिन, बसु विधि समिध जलाया है।
श्यामलि अलिकावलि सिर सोहे, मानों धुआं उड़ाया है॥ 3॥
जीवन-मरण अलाभ-लाभ जिन, तृण मणिका सम भाया है।
सुरनर नाग नमहिं पद जाके, "दौल" तास यश गाया है॥ 4॥

(10)

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहि, रीति लगत है अटापटी।। टेक।।
बाहिर नारकिकृत दु:ख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परनति तैं नित हटाहटी।। 1।।
ज्ञान-विराग-शक्तितै विधिफल, भोगत, पै विधि घटाघटी।
सदननिवासी, तदपि उदासी, तातैं आस्त्रव, छटाछटी।। 2।।

जे भवहेतु, अबुध के ते तस, करत बन्ध की, झटाझटी।
नारक पशु तिय, षंढ विकलत्रय, प्रकृतिनकी है, कटाकटी।। 3।।
संयम धर न सकै, पै संयम, धारन की उर, चटाचटी।
तासु सुयश, गुनकी 'दौलत' के, लगी रहै नित, रटारटी।। 4।।

(11)

एक योगी असन बनावै, तिस भखत ही, पाप नसावै।। टेक।।
ज्ञान सुधारस, जल भर लावै, चूल्हा, शील बनावै।
कर्मकाष्ठ को, चुग चुग बालै, ध्यान अगनि, प्रजलावे।। 1।। टेक।।
अनुभव-भाजन, निजगुण तंदुल, समता क्षीर मिलावे।
सोऽहं मिष्ट, निःशंकित व्यंजन, समकित, छोंक लगावै।। 2।। टेक।।
स्याद्वाद-सतभंग मसाले, गिनती पार न आवै।
निश्चय नय का, चमचा फेरै, बिरद भावना भावै।। 3।। टेक।।
आप बनावै, आप ही खावै, खावत नाहिं अघावै।
तदपि मुकति-पद, पंकज सेवै, 'नयनानंद' सिर नावै।। 4।। टेक।।

(12)

कहे एक सखी स्यानी, सुन री! सुबुद्धि रानी,
तेरो पति दुखी देख, लागै उर आर है।
महा अपराधी एक, पुद्‌गल है छहों माहिं,
सोई दुख देत, दीखै, नाना परकार है।
कहत सुबुद्धि आली, कहा दोष पुद्‌गल कौ,
अपनी ही भूल लाल, होत आप ख्वार है।
"खोटौ दाम अपनौ, सराफै कहा लगै वीर",
काहू कौ न दोष, मेरो भौन्दू भरतार है।

(13)

जाना नहीं निज आत्मा, ज्ञानी हुए तो क्या हुये
ध्याया नहिं शुद्धात्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए।। टेक।।
ग्रन्थ सिद्धान्त पढ़ लिये, शास्त्री महान बन गये।
आत्मा रहा बहिरात्मा, पंडित हुए तो क्या हुए।। 1।। जा०।।
पंच महा व्रत आदरे, घोर तपस्या भी करी।
मन की कषायें ना मरीं, साधु हुए तो क्या हुए।। 2।। जा०।।

माला के दाने हाथ में, मनुआ फिरे बाजार में।
मन की न माला फिरे, ते जपिया हुए तो क्या हुए।। 3।।जा०।।
गा के बजा के नाच के, पूजा भजन सदा किये।
निज ध्येय को सुमरा नहीं, भक्त हुए तो क्या हुए।। 4।। जा०।।
मान बड़ाई कारने, दाम हजारों खरचते।
भाई तो भूखों मरैं, दानी हुए तो क्या हुए।। 5।। जा०।।
करें न जिनवर दर्श को-सेवन करें अभक्ष को।
दिल मे जरा दया नहीं, जैनी हुए तो क्या हुए।। 6।। जा०।।
दृष्टि न अन्दर फेरते, औगुन पराए हेरते।
'शिवराम' एक ही नाम के, शायर हुए तो क्या हुए।। 7।। जा०।।

(14)

अरे मूरख मुसाफिर क्यों, पडा बेहोश सोता है
सभल उठ बाधले गठरी, समय क्यों व्यर्थ खोता है।। टेक।।
किसी का पल घडी छिन में, किसी का एक दो दिन मे।
बजे जब कूच का डंका, पयाना सब का होता है।। 1।।
खडा है काल लेकर मौत का, झंडा तेरे सिर पर।
अरे अब चेत चेतन देख, क्या दुनियां में होता है।। 2।।
तेरे मा बाप दादे सब, गये हैं जिस यमालय में।
उसी मे सब को जाना है, कहो किस किस को रोता है।। 3।।
बनी है हाड़ चमड़े से, रुधिर और मांस मय काया।
झरें दिन रात मल इससे, तू क्या मल-मल के धोता है।। 4।।
लडकपन खेल में खोया, जवानी में विषय सेया।
बुढापे मे बढ़ी तृष्णा, गया नर जन्म थोता है।। 5।।
गई सो तो गई अब भी, रही को राख ले 'मक्खन'।
करो निज काज आतम का, न खा भवदधि में गोता है।। 6।।

(15) दुःख और सुख

दुख भी मानव की सम्पति है तू क्यों दुख से घबराता है।
दुख आया है तो जावेगा, सुख आया है तो जावेगा।
दुख जावेगा तो सुख देकर, सुख जावेगा तो दुख देकर
सुख देकर जाने वाले से रे मानव, क्यो भय खाता है।
सुख में हैं व्यसन प्रमाद भरे, दुख में पुरुषार्थ चमकता है।

दुख की ज्वाला में पड़कर ही, कुन्दन सा तेज दमकता है।
सुख में सब भूले रहते हैं, दुख सबकी याद दिलाता है।
सुख संध्या का वह लाल क्षितिज, जिस के पश्चात् अन्धेरा है।
दुःख प्रातः का झुटपुटा समय, जिस के पश्चात् सवेरा है।
दुख का अभ्यासी मानव ही, सुख पर अधिकार जमाता है।
दुख के सम्मुख जो सिहर उठे, उनको इतिहास न जान सका।
जो दुख में कर्मठ धीर रहे, उनको ही जग पहचान सका।
दुख एक कसौटी है जिस पर यह मानव परखा जाता है।

(16)

जाग अय मूरख मुसाफिर, ये ठगों का गाम है।
जा चला जल्दी यहां से, मोक्ष तेरा धाम है॥टेक॥
पंच इन्द्रिय मन विषय, विष देके मारेंगे तुझे।
फंस न इनके जाल में ये, सोचने का काम है।।1।।
ये तेरी नवद्वार वाली, है पुरानी झोपड़ी।
हाड़ के टट्टड़ लगे, ऊपर से लिपटा चाम है।।2।।
कब तलक ठहरेगा तू, इस घर मे ये बतला तो दे।
एक दो या चार दिन में, कूंच का पैगाम है।।3।।
जिनको कहता बाप मा, भाई भतीजे यार तू।
हैं सभी साथी तभी तक, पास तेरे दाम हैं।।4।।
धाम धन दौलत खजाने, सब पड़े रह जायेंगे।
जायेगा रीता अकेला, एक आतमराम है।।5।।
सोचता क्या क्या पड़ा, इच्छा न पूरी होयगी।
शाम से होती सुबह, होती सुबह से शाम है।।6।।
स्वप्नवत् संसार झूठा, देख आंखे खोल के।
एक सच्चा ज्ञान'-मक्खन', वीर प्रभु का नाम है।।7।।

(17)

जब तेरी डोली निकाली जायगी। बिन महूरत के उठा ली जायगी।।टेक।।
उन हकीमों से यू कहदो बोल कर। दावा करते थे किताबे खोलकर।।
यह दवा हरगिज न खाली जायगी।। बिन महूरत के उठा ली जायगी।।1।।
क्यो गुलो पर हो रही बुलबुल निसार। है खड़ा पीछे शिकारी खबरदार।।

मार कर गोली गिराली जायगी।। बिन महूरत के उठा ली जायगी।। 2।।
ज़र सिकन्दर का पड़ा यहां रह गया। मरते दम लुकमान भी यह कह गया।।
यह घड़ी हरगिज न टाली जायगी।। बिन महूरत के उठा ली जायगी।। 3।।
ऐ मुसाफिर क्यों पड़ा सोता यहां। ये किराये पर मिला तुझको मकां।।
कोठरी खाली करा ली जायगी।। बिन महूरत के उठा ली जायगी।। 4।।
चेत 'भैया लाल' तुम प्रभु को भजो। मोह रूपी नींद से जल्दी जगो।।
यही आत्मा परमात्मा बन जायगी।। बिन महूरत के उठा ली जायगी।। 5।।

(18)

जिस घड़ी अपनी घड़ी, असली घड़ी पर आएगी।
कूकने से भी न इक पल, घटने बढ़ने पाएगी॥टेक॥
जो घड़ी पाकिट में, या हरदम है तेरे हाथ में,
और बड़ी भारी गारंटी, भी है जिसके साथ में,
हर घड़ी ही यह घड़ी, बतलाती है दिन रात में।
इतनी तो जाती रही, इतनी घड़ी है हाथ में,
जिस घड़ी भी वह घड़ी, तुझको नजर आ जाएगी,
उस घड़ी रखनी घड़ी, तेरी सुफल हो जाएगी।। 1।।
हर घड़ी देखे घड़ी, और है घड़ी से बेखबर,
है फिकर हरदम घड़ी का, है घड़ी से बे फिकर,
जो घड़ी का शौक है, रख हर घड़ी उस पर नजर।
हर घड़ी अपनी घड़ी को, ध्यान में रखना मगर,
जिस घड़ी भी ध्यान में, तेरे घड़ी आ जाएगी,
उस घड़ी तेरी घड़ी, अनमोल मानी जाएगी।। 2।।
हर घड़ी तुझको घड़ी, गिन गिन घड़ी बतला रही,
हर घड़ी पर हर घड़ी, हाथों से निकली जा रही,
जो घड़ी हाथों से निकली, हाथ वह नहीं आएगी।
जो घड़ी है हाथ में, वह भी न रहने पाएगी,
इससे तु अपनी घड़ी दे, वीर से घड़ीसाज को,
जो घड़ी थी वीर की, वैसी घड़ी बन जाएगी।। 3।।

(19)

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता, भरोसा है न इक पलका।
दमादम बज रहा डंका, तमाशा है चला-चलका॥ टेक॥
सुबह तो तख्तेशाही पर, बड़े सज धजके बैठे थे।
दुपहरे वक्त में उनका हुआ है, बास जंगल का।। 1।।
कहां हैं राम अरु लक्ष्मण, कहां रावण से बलधारी।
कहां हनुमन्त से योधा, पता जिनके न था बल का।। 2।।
उन्होंको कालने खाया, तुझे भी काल खायेगा।
सफर सामान उठ कर तू, बना ले बोझ को हलका।। 3।।
जरा सी जिन्दगानी पर, न इतना मान कर मूरख।
यह बीते जिन्दगी पल में, कि जैसे बुद-बुदा जलका।। 4।।
नसीहत मान ले 'ज्योति', उमर पल पल में कम होती।
जपन कर आज जिनवरका, भरोसा कुछ न कर कलका।। 5।।

(20)

थारी उत्तम क्षमा पै अचंभा म्हाने आवै स्वामी,
किस विध किये करम चक चूर।। टेक।।
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर, अस्त्र शस्त्र नहिं पास हुजूर।
दूजे जीव दया के सागर, तीजे संतोष भरपूर।। थारी उ०।।
चौथे प्रभु तुम हित उपदेशी, तारण तरण जगत में सूर।
कोमल वचन सरल सत वक्ता, निरलोभी संजम गुन पूर।। थारी उ०।।
त्यागी वैरागी तुम साहिब, आकिंचन व्रत धारी भूर।
कैसे सहस्त्र अठारह दूषण, तजके जीतो काम करूर।। थारी उ०।।
कैसे केवल ज्ञान उपायो, कैसे चउ घाती किये दूर।
कैसे मोह महाभट जीत्यौ, अंतराय कैसे कियो निर्मूल।। थारी उ०।।
कैसे ज्ञानावर्ण निवारयौ, कैसे गेरयौ अदर्शन दूर।
सुर नर मुनि सेवें चरण तुम्हारे, तो भी नहीं प्रभु तुमको गरूर।। थारी उ०।।
करत दास अरदास 'नैनसुख' दीजो मोहि प्रभु दान जरूर।
जनम जनम पद पंकज सेऊं, और न चित कछु चाह हजूर।। थारी उ०।।

(21)

कर्मन की गति न्यारी, किसी से कभी टारी न टरे।। टेक।।
रामचन्द्र से नामी राजा वन वन फिरे दुखारी।। 1।।
जन्मत कृष्ण न मंगल गाये, मरत न रोवन-हारी।। 2।।
पांचो पांडव द्रौपदि नारी, विपति भरी अति भारी।। 3।।
ऋषभ देव प्रभु षष्ट मास लौं, फिरे बिना आहारी।। 4।।
इन्द्र धनेन्द्र खगेन्द्र चक्रधर, हलधर कृष्ण मुरारी।। 5।।
'मक्खन' जिन इन कर्मन जीता, तिन चरनन बलिहारी।। 6।।

(22)

अब हम अमर भये न करेंगे।। टेक।।
तन कारन मिथ्यात्व दियो तज, क्यों करि देह धरैंगे।। 1।।
उपजै मरै कालतैं प्रानी, तातैं काल हरैंगे।
राग द्वेष जग-बंध करत हैं, इनको नाश करेंगे।। 2।।
देह विनाशी मैं अविनाशी, भेद विज्ञान करैंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरैंगे।। 3।।
मरे अनन्त बार बिन समझैं, अब सब दुख विसरैंगे।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, विन सुमरें सुमरेंगे।। 4।।

(23) सम्बोधन

सदा संतोष कर प्राणी, अगर सुख से रहा चाहे,
घटा दे मन की तृष्णा को, अगर अपना भला चाहे।
आग मे जिस कदर ईन्धन, पड़ेगा ज्योति ऊंची हो,
बढ़ा मत लोभ की तृष्णा, अगर दुख से बचा चाहे।। 1।।
वही धनवान है जग में, लोभ जिसके नहीं मन में,
वह निर्धन रंक होता है, जो परधन को हरा चाहे।। 2।।
दुखी रहते हैं वह निशदिन, जो आरत-ध्यान करते हैं,
न कर लालच अगर आजाद, रहने का मजा चाहे।। 3।।
बिना मांगे मिलें मोती, 'न्यायमत' देख दुनियां में,
भीख मांगे नहीं मिलती, अगर कोई लिया चाहे।। 4।।

(24)
आरती श्री आदि नाथ जी

जय जय श्री आदि जिन! तुम हो तारन-तरन,
भवि जन प्यारे! इन्द्र धरणेन्द्र स्तुतिधरे तुम्हारे।।
प्रभु ! तुम सर्वार्थसिद्धि से आये माता मरुदेवी के सुत कहाये
नाभि नृप के नंदन! तुमको शतशत वंदन हों हमारे। इंद्र धरणेन्द्र।
कर्मयुग के प्रथम तुम विधाता लोक हित मार्ग के आदि ज्ञाता
अंक अक्षर कला तुम से प्रकटे प्रभो! शिल्प सारे।। इन्द्र धरणेन्द्र।।
देख नीलांजना के निधन को, राज छोड़ा, गये देव वन को
योग साधा कठिन, कर्म बन्धन गहन, तोड़ डाले।। इन्द्र धरणेन्द्र।।
सिद्ध परमात्मपद पा गये तुम, शम्भु, ब्रह्म, जिनेश्वर हुए तुम
सिर नवाते हुए, गुणगण गाते हुए, गणधर हारे।। इन्द्र धरणेन्द्र।।
नाथ! अपनी चरण भक्ति दीजे, आत्मगुणसिन्धु में मग्न कीजे
छीजे आवागमन, शिवपुर में हो गमन, कर्म झारे।। इन्द्र धरणेन्द्र।।

(25)
जीवन की असारता

पड़े रहे सब रंगले बंगले, खाली बारादरी रही।
जोड़-जोड़ भर लिए खजाने, तेरी तृष्णा अड़ी रही।। टेक।।
एक ब्राह्मण का हाल सुनो, जजमान के घर पर जाता था,
नहा धोय के नदी किनारे, गायत्री मंत्र चलाता था।
लगा तमाचा मौत का ऐसा, हाथ में माला पड़ी रही।। 1।।
ऊंचे महल पर एक स्त्री, चढ़ी सिंगार बनाने को,
भरी सलाई सुरमे वाली, आंख में सुरमा पाने को।
काल गुलेल लगी पीछे से, सुरमादानी पड़ी रही।। 12।।
एक लालाजी बांध के चीरा, हट्टी ऊपर बैठ गये,
इतने मे इक चक्कर आया, पांव पसार के लेट गए।
कूँच कर गया लिखने वाला, कलम कान मे अड़ी रही।। 3।।
एक बाबूजी सैर करन को, गाड़ी पर असवार हुए,
गाड़ी अभी चलने नहिं पाई, बाबूजी ठण्डे ठार हुए।
लगा तमाचा अजलका ऐसा, सड़क पै टमटम खड़ी रही।। 4।।

गौरीशंकर चेतो प्राणी, झगड़े और फिसाद तजो,
क्या रखा है इन झगड़ों में, मस्त रहो भगवान भजो,
खिले कमल मिट गये चमन में, ना कोई फूलहि झड़ी रही।।5।।

(26)

क्या तन मांजता रे, क्या तन धोवता रे,
यह तन माटी में मिल जाना।।टेक।।
साबुन तेल सुगन्ध लगा कर, बदला सुन्दर बाना,
मैल रात दिन झरे वदन से, इसका भेद न जाना।।1।।
कंगन मुन्दरी कुण्डल माला, भूषण पहरे नाना,
तीन रत्न तन कभी न धारे, यह सब माल बिगाना।।2।।
ऊंचे अद्भूत महल चिनाये, जोड़ा माल खजाना,
इक दिन जंगल में हो बासा, क्या निर्धन क्या राना।।3।।
धूप, ओस, गर्मी, सर्दी से चाहे इसे बचाना,
होय क्षार कण कण उड़ जावे, पावें कहां ठिकाना।।4।।
ढीली हो गई माल मूढ़ अब, क्यों कस कस कर ताना,
पग खूंटे सब खट खट हालें, चरखा हुआ पुराना।।5।।
घटी शक्ति शिथिल, हुई इन्द्रियां, जोवन फिर नहीं आना,
अब क्या सोचे धर्म खेत का, चिड़िया चुग गई दाना।।6।।
'मंगत' चूसे स्वाद न आवे, नर भव सांठा काना,
इसको बो संजम की धरती, जो चाहे फल खाना।।7।।

(27)

दिगम्बर मुनि-स्तुति

जगे हैं पुण्य भव्यों के, दिगम्बर देव आये हैं।
जगत में मोक्ष का साकार, शुभ संदेश लाये हैं।। जगे०।।
उठो भव्यो, चलो पुण्यात्मवानों, भक्ति भावें हम।
रहे चिरकाल से सोये, समय सुख को जगायें हम।
मिले उपयोग के शुभक्षण, खिले हैं पुष्प नंदन के।
चरण कर स्पर्श कर लोहा, लहेगा रूप कुंदन के।
कमल रचना कुशल पावन, चरण गुरु ने बढ़ाये हैं।। जगे०।।
स्वयं कचलौंच करते हैं, अचेलक रूप के धारी।

महाव्रत पंच पालक हैं, जगत् के परम उपकारी।
कमल निर्लेप रहते हैं, निरंतर आत्मचिंतन में।
कुबेरों का विभव अर्पित, हुआ है शिव अकिंचन मे।
स्वर्ण मन्दिर शिखर पर, मणिकलश मानो उठाये हैं ।। जगे०।।
हृदयगृह में त्रिरत्नों के, अकम्पित दीप जलते है।
समितियां साथ रहती हैं, जहां मुनिराज चलते हैं।
कमंडलु पिच्छी शोभित हैं, उपकरण शौच संयम के।
प्रदाता ज्ञान के सम्यक्, निवारक है अखिल भ्रम के।
परम चिन्मय अभीक्षणज्ञान, सागर में नहाये हैं।। जगे०।।

(28)

हार्दिक भावना

मैं वो दिन कब पाऊं, घर को छोड़ बन जाऊं; मैं वो०
अंतर बाहिर त्याग परिग्रह, नग्न स्वरूप बनाऊं; मैं वो०
सकल विभाव मयी परिणति तज, स्वाभाविक चित लाऊं; मैं वो०
पर्वत गुफा, नगर सुन्दर घर, दीपक चांद मनाऊं; मैं वो०
भूमि सेज, आकाश चंदोवा, तकिया भुजा, लगाऊं; मैं वो०
उपल जान मृग खाज खुजावत, ऐसा ध्यान लगाऊं; मैं वो०
क्षुधा तृषादिक सहूं परीषह, बारह भावन भाऊं; मैं वो०
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, दश लक्षण उर लाऊं, मैं वो०
चार घातिया कर्म नाश कर, केवल ज्ञान उपाऊं; मैं वो०
घात अघाति लहूं शिव 'मक्खन', फेर न जग में आऊं; मैं वो०

(29)

पूजन रहस्य

अजब हैरान हूं भगवन तुम्हें क्यों कर रिझाऊं मैं
नहीं इच्छा तुम्हें कुछ भी, कहो क्या वस्तु लाऊं मैं।। 1।।
यह माना आप मुक्ति में, विराजे हैं बिलाशक दूर।
नहीं संसार में आते, भला फिर क्यों बुलाऊं मैं।। 2।।
तुम्हें आह्वाहन करने का फकत मेरा ये है मतलब।
विराजे आ निकट भगवन, भाव दिल में जमाऊं मैं।। 3।।
यह जल चंदन पुष्प अक्षत, चरू दीपक धूप और फल।

भावना आठ भाने को चरण में अब चढ़ाऊं मैं।। 4।।
चढ़ाकर फूल चरणों में, यही है भावना दिल की।
काम का नाश हो मेरे, शील लक्ष्मी को पाऊं मैं।। 5।।
यह नेवज चरण में रखकर, करूं मैं प्रार्थना इतनी।
क्षुधा पाचन के दुखों से, प्रभू जी छूट जाऊँ मैं।। 6।।
ले दीपक भावना भाऊं, जगत में छाया अंधेरा।
ज्ञान दीपक जला करके, मोह तम को भगाऊं मैं।। 7।।
प्रभू संसार तापों से, हुआ संतप्त हूं भारी।
चढ़ा चन्दन को चरणों में, दाह अपनी मिटाऊं मैं।। 8।।
यह जल फल धूप और अक्षत, समर्पित करके चरणों में
कहे 'शिवराम' शिव फल दो, कर्म आठों खपाऊं मैं।। 9।।

(30)

भजन मोक्ष के प्रेमी

मोक्ष के प्रेमी हमने, कर्मों से लड़ते देखे।
मखमल पर सोने वाले, भूमि पर पड़ते देखे।।
सरसों का दाना जिनके, विस्तर पर चुभता था,
काया की सुध नहीं, गीदड़ तन भखते देखे।
अर्जुन व भीम जिनके, बल का न पार था,
आत्म उन्नति के कारण, अग्नि में जलते देखे।
पार्श्वनाथ स्वामी उसी भव मोक्षगामी,
कर्मों ने नाहिं छोड़ा, पत्थर तक पड़ते देखे।
बौद्धों का जोर था जब, निकलंक देव देखे,
धर्म को नाहीं छोड़ा, मस्तक तक कटते देखे।
सेठ सुदर्शन प्यारा, रानी ने फन्दा डारा,
शील को नाहीं भंगा, सूली पर चढ़ते देखे।
भोंगों को त्याग चेतन, जीवन है जाये बीता,
तृष्णा ना हुई पूरी डोली में चढ़ते देखे।

(31)

भाव वैराग दर्शावे, जो मूरत हो तो ऐसी हो
न रागी हो न द्वेषी हो, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।

जिसे देखे से पैदा दिल में हो अनुभव निजातम का।
स्वपर का भेद परकाशे, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।
न वस्त्र हों न शस्त्र हों, नहीं हो संग में नारी।
न विग्रह हो न वाहन हो, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।
दिगम्बर रूप पदमासन, विगत दूषन निराभूषण।
यही अरिहंत की मूरत, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।
नजर आखों की नाशाकी अनीपर से गुजरती हो।
सरासर शान्त मूरत हो, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।
सर्व जग जीव हितकारी, छवी वैराग सुखकारी।
'न्यामत' जाऊं बलिहारी, जो मूरत हो तो ऐसी हो।।

बारह भावना

लेखक-अज्ञात

निज स्वभाव की दृष्टि धर, बारह भावना भाय।
माता है वैराग्य की, चिन्तत सुख प्रगटाय।। 1।।

अनित्य-

मैं आत्मा नित्य स्वभावी हूं, ना क्षणिक पदार्थों से नाता।
संयोग शरीर, कर्म, रागादिक, क्षणभंगुर जानो भ्राता।
इनका विश्वास नहीं चेतन, अब तो निज की पहिचान करो।
निज ध्रुवस्वभाव के आश्रय से, ही जन्म, जरा मृत रोग हरो।। 2।।

अशरण-

जो पापबंध के है निमित्त, वे लौकिक जन तो शरण नहीं।
पर सच्चे देव शास्त्र गुरु भी अवलम्बन है व्यवहार गही।।
निश्चय से वे भी मित्र अहो! उन सम नितलक्ष करो आत्मन्।
निज शास्वत ज्ञायक ध्रुवस्वभाव ही एकमात्र है अवलम्बन।। 3।।

संसार-

ये बाह्य लोक संसार नहीं, ये तो मुझ सम सत् द्रव्य अरे।
नहिं किसी ने मुझको दुःख दिया, ना कोई मुझ को सुखी करे।।
निज मोह, राग अरु द्वेषभाव से, दुख अनुभूति की अब तक।
अतएव भाव संसार तजूं अरू भोगूं सच्चा सुख अविकल।।4।।

एकत्व-

मैं एक शुद्ध, निर्मल अखण्ड, पर से न हुआ एकत्व कभी।
जिनको निज मान लिया मैंने, वे भी तो पर प्रत्यक्ष सभी।।
नहीं स्व-स्वामी संबंध बने, माना यह भूल रही मेरी।
निज में एकत्व मान करके, अब मेटूँ भव-भव की फेरी।।5।।

अन्यत्व-

जो भिन्न चतुण्टय वाले है, अत्यन्ताभाव सदाँ उनमें।
गुण पर्यय में अन्यत्व अरे, प्रदेश भेद ना है जिनमें।।
इस संबंधी विपरीत मान्यता से संसार बढ़ाया है।
निज तत्व समझ में आने से समरस निज में ही पाया है।।6।।

अशुचि-

है ज्ञान देह पावन मेरी, जड़ देह राग के योग्य नहीं।
यह तो मलमय, मल से उपजी, मल तो सुखदायी कभी नहीं।।
भो आत्मन! श्रीगुरु ने रागादिक को अशुचि अपवित्र कहा।
अब इनसे भिन्न परमपावन, निज ज्ञानस्वरूप निहार अहा।।7।।

आस्रव-

मिथ्यात्व कषाय, योग द्वारा, कर्मों को नित्य बुलाया है।
शुभअशुभ भाव क्रिया द्वारा, नित दुख का जाल बिछाया है।।
पिछले कर्मोदय में जुड़कर, कर्मों को ही छोड़ा बांधा।
ना ज्ञाता दृष्ठा मात्र रहा, अब तक शिवमार्ग नहीं साधा।।8।।

संवर-

मिथ्यात्व अभी सत्श्रद्धा से, व्रत से अविरति समाप्त करूं।
मैं निज में रखूं सावधानी, निःकषाय भाव उद्योत करूं।।
शुभ, अशुभ योग से भिन्न आत्म में, निष्कंपित ही जाऊंगा।

संवरमय ज्ञायक आश्रय कर, नव कर्म नहीं अपनाऊंगा।। 9।।

निर्जरा-

नव आस्रव पूर्वक कर्म तजे, इससे बंधन न नष्ट हुआ।
अब कर्मोदय को ना देखूं, ज्ञानी से यही विवेक मिला।।
इच्छा उत्पन्न नहीं होवे, बस कर्म स्वयं झड़ जावेंगे।
जब किंचित नहीं विभाव रहे, गुण स्वयं प्रगट हो जायेंगे।। 10।।

लोक-

परिवर्तन पंच अनेक किये, संपूर्ण लोक में भ्रमण किया।
ना कोई क्षेत्र रहा ऐसा, जिस पर ना हमने जन्म लिया।
नरकों स्वर्गों में घूम चुका, अतएव आश सबकी छोडूं
लोकाग्र शिखर पर थिर होऊं, बस निजको निजमें ही जोडूं।। 11।।

बोधिदुर्लभ-

सामग्री सभी सुलभ जग में, बहुबार मिली छूटी मुझसे।
कल्याण भूल रत्नत्रय परिणति, अब तक दूर रही मुझसे।।
इसलिए न सुख का लेश मिला, पर में चिरकाल गंवाया है।
सद्‌बोधि हेतु पुरुषार्थ करूं, अब उत्तम अवसर पाया है।। 12।।

धर्म-

शुभ, अशुभ कषायों रहित होय, सम्यग्चारित्र प्रगटाऊंगा।
बस निज स्वभाव साधन द्वारा, निर्मल अनर्घपद पाऊंगा।।
माला तो बहुत जपी अब तक, अब निजमें निज का ध्यान धरूं।
कारण परमात्मा तो अब भी हूं, पर्यय में प्रभुता प्रगट करूं।। 13।।
ध्रुव स्वभाव सुख रूप है, उसको देखूं आज।
दुखमय राग विनष्ट हो, पाऊं सिद्ध समाज।। 14।।